चना-चबेना

[हास्य-रसपूर्ण सरस पद्य-माला]



रचयिता

पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा

भूतपूर्व "मनोरञ्जन"-सम्पादक



प्रकाशक

शिवपूजन सहाय

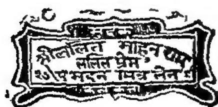
व्यवस्थापक, सरस-साहित्य-माला,

आरा (बिहार)

प्रथम बार] सं० १९८१ [मूल्य १)

चार चाँवल

चना-चवेना गङ्ग जल, जो पुरवें करतार।
हँसिये और हँसाइये, बनिये लंठ लबार ॥१॥
चना-चवेना फाँकि लो, पहनो मोटा सूत।
चाल पुरानो ही चलो, दिल राखो मजबूत ॥२॥
चना चवेना जो मिले, क्यों चाहें हम चून ?
राम दया करि हेरिहैं, पूरी दूनो जून ॥३॥
चना-चवेना चाबि लो, तज चटोरपन बान।
रहो मस्त अलमस्त है, हृदै राखि भगवान ॥४॥



समर्पण



स्वर्गीय पं० रघुवीरदत्त शर्मा,

(मठिला-डुमराँव-निवासी)

यार !

तुम तो हमलोगोंको बेतरह धोखा देकर एक-ब-एक चले गये और हम दोस्तोंको रोनेके लिये इस पाप-ताप, छल प्रपंच और दुःख-कष्टसे भरी हुई दुनियामें छोड़ गये ! ओह ! क्या रंगीन तबियत तुमने भी पायी थी। जहाँ कहीं बैठ जाते, वहीं यारोंका जमघट्ट लग जाता, हँसीका फौआरा छूटने लगता, हँसते हँसते लोगोंके पेटमें बल पड़ जाते। वह हर बातका जवाब हाज़िर रखना, बातोंका पुल बाँधना, हर वाक्यमें नोकझोंककी अदा दिखलाना जब याद आता है, तब कलेजेपर सौ बिच्छुओंका एक साथ डंक बैठता है। तुम्हारी ही बदौलत मुझ-सा मुँहचोर, कमसखुन और बोदा भी बातूनी बन गया। यार ! अब इस दुनियामें तुम कहाँ मिलोगे जो तुम्हें गरमागरम चना-चबेना चखाऊँगा ? इसी लिये महज़ तुम्हारे नामपर इस चने-चबेनेका नैवेद्य उत्सर्ग किये देता हूँ। किसी लोकमें होना, इसे स्वीकार करना।

तुम्हारा,—ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

विषय-सूची

सच पूछिये, तो इस झोलेमें जितने चने-चबेने हैं, वे सब अधिकतर "मतवाला"के और फिर 'मौजी', 'गोलमाल', 'भूत' और 'मनोरमा' आदिके भाड़में भूने गये हैं। कुछ इधर-उधरके हैं, तो कुछ एकदम कोरे भी हैं। आशा कामिल है, कि मेरी यह सुदामाकी-सी भेंट हिन्दीके उदार पाठक कृष्णकी सी सहृदयताके साथ अपनायेंगे।

हिन्दी साहित्यमें अनेक रसीली रचनाएँ अबतक निकल चुकी हैं और प्राय. निकलती ही रहती हैं। उन सब रँगीली, रसीली, चुभीली, चटकीली, नुकीली, भड़कीली और जोशीली रचनाओंके स्वादके ऊपरसे यदि मेरी यह कड़वी, कसैली, खारी और गँवारी रचना भी कुछ प्रिय हो सकी, तो मैं यही समझूंगा, कि कविवर रहीमका यह दोहा सार्थक हो गया—

"नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन ?
मीठो भावै लौनपर, अरु मीठेपै लौन।"

कलकत्ता,
शिवरात्रि,
(सं० १६८१)

निवेदक,
ईश्वरीप्रसाद शर्मा

चना ज़ोर गरम !



"The humorous writer professes to awaken and direct your love, your pity, your kindness—your scorn for untruth, pretension, imposture—your tenderness for the weak, the poor, the oppressed, the unhappy A literary man of the humorist turn is pretty sure to be of a philanthropic nature, to have a great sensibility to be easily moved to pain or pleasure, keenly to appreciate the varieties of temper of people round about him, and sympathise in their laughter, love, amusement, tears—the best humour is that which is flavoured throughout with tenderness and kindness"

—Thackeray.

व्यङ्ग्य और हास्य-रससे भरा हुआ साहित्य मनुष्यके मनपर कितनी आसानीसे कैसी गहरी चोट पहुंचाता है, किस तरह हँसाते हुए बडी-बड़ी बातें बतला जाता है,

यह बात ऊपरके अवतरणसे भलीभाँति विदित हो जाती है। इसके लेखक विलियम थैकरे अँगरेजीके बहुत बड़े हास्य-लेखक हो गये हैं। अतएव, आपका कहना कितना अनुभव पूर्ण, कितना सत्य और समीचीन है कि हास्य-रसका लेखक हमारे मनमें प्रेम, दया और करुणाका उद्रेक करता है, असत्यके प्रति घृणा उत्पन्न करता हैं, बेईमान धोकेबाजोंकी पोल खोलता है तथा दुर्बल, दरिद्र, दुखित और दलित जीवोंके प्रति सरस करुणाका स्रोत हृदयके अन्दर प्रवाहित कर देता है। हास्य-लेखक अपने चारों ओर जिन लोगोंको पाता है, उनकी हँसी, प्रीति, विनोद और अश्रुमें सहानुभूतिपूर्ण हृदय रखते हुए अपनी समस्त रचनामें करुणा और सहानुभूतिकी धारा प्रवाहित करनेका प्रयत्न करता है।

वास्तवमें हास्य-लेखक बड़ा ही कुशल होना चाहिये। वह कामकी बातें भी सुनाये और हँसा-खिलाकर कड़ी-से-कड़ी बात कह जाये, यही उसकी तारीफ है। हिन्दीमें एक जमाना था, जब कि बड़े-बड़े हास्य-लेखक थे; पर अब तो मैदान उस टक्करके लोगोंसे एकदम सूना नहीं, तो बहुत भरा हुआ भी नहीं है।

ब्रजभाषा-साहित्यमें हास्य और व्यंग्यसे भरी हुई

रचनाएं मौजूद हैं। कबीरदासकी उलटी वाणी परम प्रसिद्ध है। उनकी सीधी बातोंमें भी व्यंग्यकी बू भरी हुई है। गुसाईं तुलसीदास सारी रामायणमें शान्ति, भक्ति और प्रेमकी धारा बहा गये हैं; पर हास्य उनके हाथसे भी नहीं छूटने पाया। न विश्वास हो, तो बाल-काण्डमें शिवजीका विवाह-प्रकरण पढ़ लीजिये। वहींकी यह कहावत है कि 'जस दूलह तस बनी बराता!' सूरदासके गोपी-ऊधो-संवादमें भी कम मजेदारी नहीं है। गङ्ग, रहीम, बैताल, गिरिधरराय आदिकी खरी उक्तियोंमें व्यङ्ग्य-रङ्गकी खासी बहार है। सिर्फ समझनेवाला सहृदय रसज्ञ चाहिए। यदि एक ही जगह बहुत सी हास्य-रचनाएं देखनी हों, तो "भड़ौआ-संग्रह" के चारों भाग देख जाइये। निहायत अच्छी चीज है।

खड़ी बोलीके गद्य-पद्यमें भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके ही समयसे हास्य और व्यङ्ग्यकी लहर चली। उनके लिखे हुए "अन्धेर-नगरी" आदि प्रहसन पढ़े और "भारत-दुर्दशा" में "चूरनके लटके" का मजा लें, तो मेरी गवाहीकी क़तई जरूरत न रहे। भारतेन्दुके अतिरिक्त पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० रामशंकर व्यास, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० बदरीनारायण चौधरी, प० रुद्रदत्त शर्मा और बाबू

बालमुकुन्द गुप्त आदि पुराने हिन्दी-लेखकों ने हास्य और व्यंग्यकी खूब ही निराली छटा छहराई। इसी दलके पं० शिवनाथ शर्मा लखनवो आजतक "मिस्टर व्यासकी कथा" सुनाकर हँसाते और खरी बातें सुनाते हैं। खेद है, बहुत-से हास्य-रसके पुराने लेख यों ही पत्रों की फाइलों में सड़ गये। हिन्दीवालोंने उनका उद्धार तक नहीं किया।

स्वनामधन्य पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी हास्य-रसके विशेष लेखक नहीं हैं, तो भी आपकी उक्तियोंमें व्यंग्य और प्रच्छन्न हास्यकी ऐसी अन्तर्धारा रहती थी कि उनके सम्पादन-कालमें लोग 'सरस्वती' की समालोचनाएँ पढ़नेके लिये लालायित रहा करते थे।

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीकी चोज भरी इबारत-आराई हिन्दीवाले कभी भूल नहीं सकते। उनके "शिव-शम्भुके चिट्ठे" तथा 'चिट्ठे और खत" में बंकिमका-सा लेखन-चातुर्य और गम्भीर हास्य भरा हुआ है। हर्षकी बात है कि उनके साथी पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी आज भी लोगोंको उनकी याद दिला दिया करते हैं। चौबेजी न केवल हास्य-रसके लेख ही लिखते, बल्कि चलते-फिरते, व्याख्यान देते, बातें करते, सदा हास्य व्यंग्य की धारा बहाया करते हैं। हास्य की मंजुल मूर्ति हैं।

पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी०ए० अल्पायु ही हो गये ; नहीं तो उनसे हिन्दीका हास्य-साहित्य अवश्य अलंकृत होता। वे भी अच्छी चोजदार रचनाएँ करते थे। उनके मित्र प० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० बडे ऊँचे दर्जेके विनोदी लेखक हैं। आपका 'मनोरजन' और 'चुंगीकी उम्मेदवारी' सुन्दर हास्य और शुद्ध व्यग्यके नमूने हैं।

श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव हिन्दीके 'मोलियर' हैं। हास्यपटुत्वके लिये पदक पा चुके हैं। आपको रचनाएँ हँसीकी फौआरा हैं। आपकी चुलबुली भाषामें बडी लोच और फडक रहती है। उसमें रवानी होती है। सबसे पहले आप "इन्दु" और "मनोरजन" द्वारा ही हिन्दी-ससारमे आये थे।

उपर्युक्त 'मनोरजन'के द्वारा बरसों मनोरञ्जक साहित्यका अच्छा प्रचार हुआ। खेद है कि वह;पत्र चिरस्थायी नहीं हो सका , परन्तु उसके यशस्वी सम्पादक पूज्यपाद पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा यदा-कदा अपने लेखों द्वारा लोगोंका मनोरञ्जन करते रहते हैं। हास्यपूर्ण पद्य-रचनामे आपको अच्छी सफलता होती है। सम्प्रति हिन्दीमें जितने भी हास्य-रसके पत्र निकलते हैं, उन सभीमें आपकी इस तरहकी विनोद पूर्ण रचनाएं छपती रहती हैं। प्रस्तुत

पुस्तकमें जिन हास्यमयी रचनाओं का संग्रह है, उनमें बहुत-सी हास्यरसके सामयिक पत्रों में छप भी चुकी हैं, परन्तु कितनी अप्रकाशित ही हैं।

पण्डितजीकी रचनाओं के विषयमें हम अपनी ओरसे कुछ न कहकर सुप्रसिद्ध विनोदी पत्र "मतवाला" के सम्पादकके ही शब्दोंमें सुनाये देते हैं। वे 'मतवाला'के दूसरे वर्षके पहले अङ्कमें लिखते हैं—"हम अपने सुप्रसिद्ध विनोदी मित्र 'मनोरञ्जन'-सम्पादक पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्माको भी बड़े प्रेम और आदरके साथ स्मरण करते हैं, जिनकी हास्य-रसमयी कविताओंने समय-समयपर "मतवाला" को विशेष चित्ताकर्षक बनाया है। शर्माजीको विनोदका व्यसन है। वे मनोरञ्जनकी मूर्त्ति हैं।"

वास्तवमें जिन लोगोंका पण्डितजीसे परिचय है, वे बखूबी जानते हैं कि उन्हें खुशदिली कितनी पसन्द है, और वे मुहर्रमी सूरतों से कितना परहेज रखते हैं। इसीलिये आपकी रचनाओंमें भी आपकी हास्यमयी प्रकृति प्रस्फुटित हुए बिना नहीं रहती। जो पंक्तियाँ इस ग्रन्थमें प्रकाशित हैं, उनके लिखे जानेका, मनोविनोदके सिवा, और कोई खास उद्देश नहीं है, तथापि उनमें कितनी ही राज-नीतिक, सामाजिक और साहित्यिक बातोंपर बड़ चुभती

हुई फबतियाँ जड़ी गयी हैं कि किसी-किसीके तो कलेजेके पार हो जायेंगी। वर्त्तमान युगकी दैनिक बातोंको लेकर ही पण्डितजीने उनपर हर-एक पहलूसे विचार करते हुए कटाक्ष किया है। विनोदके ही मिससे आप बहुत कुछ खरी-खरी सुना गये हैं। इसलिये इसे निरे सूखे चने और चबेना ही न समझें, इसके साथ-साथ लाल और हरी मिर्चें भी हैं—जरा सम्हलकर जबानपर रखियेगा।

इस पुस्तककी भाषा बड़ी चुस्त है। कहीं-कहीं बाज-बाज वाक्योंका प्रयोग तो इतना सुन्दर हुआ है कि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। मैं जहाँतक समझता हूँ, हिन्दीमें यह अपने ढङ्गकी नयी और मनोरञ्जक सामग्री प्रमाणित होगी और इसका अधिकाधिक प्रचार भी होगा।

यदि पाठक-वर्गने इसे अपनाया, तो शीघ्र ही इस मालाका दूसरा ग्रन्थ "कचालू रसीला" निकाला जायेगा, जिसमें पण्डितजीकी अन्यान्य हास्यरसमयी रचनाएँ—गद्य-पद्य-मिश्रित—प्रकाशित की जायेंगी।

'मतवाला'-कार्यालय २३, शंकरघोष लेन, कलकत्ता (होली, वि० स० १९८१)	हास्य व्यङ्ग्यानुरागियोंका सेवक शिवपूजन सहाय प्रकाशक

चना-चबेना ।

चौपट-पुराणम् ।

तृतीयोऽध्याय ।

बाबा-चेला-प्रकरणम् ।

बाबाजी उवाच ।

आओ, आओ, चेले मेरे, कर लो मौज-बहार ।
एकाकार करो भारतको, होकर विगत-विकार ॥
रहें नहि बाबू बनिये । रहें नहि मोची धुनिये ।
सभी हों हिन्दू सच्चे । न होवे धर्मके कच्चे ॥१॥
खान-पानका भेद मिटा दो, करो राष्ट्रको एक ।
दाढ़ी-चुटिया सब कटवा दो, रहे न कोई टेक ॥
तभी तो उन्नति होगी । सभी विधि सम्पति होगी ।
बनेगा भारत लन्दन । तजो सब रोरी-चन्दन ॥२॥

चेला उवाच ।

अहा ! क्या बात अगम है ! गुरुका ज्ञान अगम है !

चेलिन बननेको नहिं कहता, साथिन तो बन जाओ।
धर्म-कार्यमें स्वार्थ छोडकर, मेरा हाथ बँटाओ ॥
छोडो छल-छन्द पुराना। बदलता रोज़ जमाना।
करो कुछ सच्ची सेवा। मिलेगा मिसरी-मेवा ॥११॥

बीबी उवाच।

बाबा! मुझसे मत बोलो, चोंच अपनी मत खोलो।
करती आयी अपने मनकी, रही सदा स्वच्छन्द।
अन्त समयमें चेलिन बन, क्यों पड़ूँ तुम्हारे फन्द?
चलूँगी अपने रस्ते। फँसूँ या छूटूँ सस्ते।
उड़ाऊँ तेरी खिल्ली। शेरनी हूँ, नहिं बिल्ली ॥१२॥

चेला उवाच।

वाह वा! गुरुआनीजी! वाह, बुढ़िया नानीजी!
भागो, भागो, याँ से अब तो, बहुत बुरे दिन आये।
भगत तुम्हारे भाग भागकर, बाबाके ढिग आये ॥
चलेगी एक न तुमरी। हटाओ डफली-पँजरी।
राह लो अपने घरकी। कसम चक्करके सरकी ॥१३॥

इतिश्रीचौपटपुराणे, भविष्योत्तरखण्डे बीसवीं-सदीवर्णने असहयोगान्दोलनान्तर्गत बाबा-बीबी-प्रकरण नाम तृतीयोऽध्याय समाप्त।

गड़बड़झाला-प्रकरणम् ।



बाबाजी उवाच ।

सुनो यह ज्ञान अगम है,—अहा ! क्या ज्ञान अगम है ।

होली आयी, होली आयी, लूटो मौज-बहार ।
जात पाँतका भेद मिटा दो, कर दो एकाकार ॥
रहे नहि नीचा कोई । बने नहि ऊँचा कोई ॥
सभीका धर्म एक हो । सभीका कर्म एक हो ॥१॥

सुनो सब चेले-चेली ! करो अब रेलापेली ।
बाम्हन-बनिये, मोची-धुनिये, सैयद, सेख, पठान ।
रोटी-बेटी एक करो सब, तजो द्वैतका ध्यान ॥
तभी तो ज्ञान बढ़ेगा । देशका मान बढ़ेगा ॥
बनेगा भारत लण्डन । होयगा जगका मण्डन ॥२॥

चेला उवाच ।

अहा ! क्या ज्ञान बताया, भेदका भरम गँवाया ।
अगम अगोचर महिमा गुरुकी, दुनिया भेद न जाने ।
परमेश्वर-अवतार आप हैं, जो जाने सो माने ॥
चलो सब दौड़ो सरपट । मिटाओ सारी खटपट ॥
होवेगी उन्नति झटपट । रखो मत जीमें लटपट ॥३॥

(२)

पुरुषकी मतिही है कुछ और,
नारिकी गतिही है कुछ और।
कहे यह और, करे वह और,
देख लो दुनियाका यह तौर।

(३)

कहाँ दो कहलाते थे एक,
जन्म-भर धरे प्रेमकी टेक।
वहाँ अब बदले रङ्ग अनेक,
नामको रहा नहि सुख नेक।

(४)

पुरुषको भावे ग्राम-निवास,
नारिको भावे नगर-विलास।
पुरुष कट्टर खद्दरधारी,
नारिको मलमल है प्यारी।

(५)

"धना दो गहना सोनेका,
नहीं तो मेल न होनेका।"
पुरुषने कहा,—"व्यर्थ गहना—
नारिका शील बड़ा गहना॥"

(६)

नारिने विगड बतायी डाँट,
पुरुषकी दिया युक्तिको काट।
लगी-लिपटी फिर बोली बात,
लगायी सोलह आने घात॥

(७)

पुरुषने कहा,—"स्वामि-सेवा
नारिको देती है मेवा।
सतीही पतिको प्यारी है,
वही बस सच्ची नारी है॥"

(८)

नारिने कहा,—"करो मुँह बन्द,
न फिर कहना ऐसा हरचन्द।
नारिको मत मानो दासी,
नहीं तो मंद होगी खासी॥

(९)

नारि हम नहीं, नरोंकी खान,
हमें हैं मान रहे भगवान।
देवियाँ हम कहलाती हैं,
माने जग भरसे पाती हैं॥"

(१८)

"यही आदर्श पुराना है,
जिसे सतियोंने माना है।
इसे यदि तुम भी मानोगी,
लोक परलोक बना लोगी।"

आजकलकी गृहस्थी।

(१)

सुख गृहस्थीका मिला है धूलमें।
लग गया काँटा रसीले फूलमें॥
प्रेम आपसका हवामें मिल गया।
फूटकाही फूल ऐसा खिल गया॥

(२)

पुरुषने पायी हैं ऊँची डिग्रियाँ।
घरमें अनपढ़ भर रही हैं नारियाँ॥
मिल रही जोडी यहाँ बेमेल है।
खेलता विधना अनोखा खेल है।

(३)

लड़ रही आपसमें नित हैं नारियाँ।
हैं उलझ जाती ननँदसे भाभियाँ॥
देवरानीसे जिठानी लड़ रही।
दूसरीको एक नानी कह रही॥

(४)

घरके कामोंमें नहीं जी लग रहा।
समय है आलस्यमें ही कट रहा॥
ईश चरणोंका भुलाया ध्यान है।
पति पदोंका कुछ न रखती मान हैं॥

(५)

ईश-पूजाका दिखाती त्याग हैं।
क्यों पड़ी ऐसी कुएमें भाँग है?
नारिके हित स्वामि-सेवा धर्म है।
उसके हित बस एकही यह कर्म है॥

(६)

इसके यत्नसे प्राप्त होता स्वर्ग है।
यह दिलाता नारिको अपवर्ग है॥
भूलकर सीधी सुगम-सी बातको।
मानतीं क्यों दिन अँधेरी रातको?

(७)

तीर्थ, व्रत, पूजा,—सभी बेकार है।
पति पदोंसे यदि नहीं कुछ प्यार है॥
वह गृहस्थ जलके होती क्षार है।
जिसमे आपसमें मची तकरार है॥

(८)

आजकल घर-घर कलह है छा रही।
सम्पदा होकर विदा है जा रही॥
घिर रही काली घटा आपत्तिकी।
मिट रही आशा सभी सम्पत्तिकी॥

(९)

नारियाँ यदि मेलसे रहने लगें।
सुख सदनमें नित्यही होने लगे॥
स्वर्गका सुख भूमिपर दिखलायगा।
स्वर्ग पानेको न मन ललचायगा॥

(१०)

आजसे ही तुम बनो गृहलक्ष्मियाँ।
फैल जायें तव गुणोंकी रश्मियाँ॥
सती साध्वी नाम धरवा लो सभी।
पैर अपने जगसे पुजवा लो अभी॥

मियाँ मिट्ठू ।

अजी ! मैं हूँ सबका सिरताज । न रखता शंका और न लाज ॥
बिगाड़ूँ रोज पराया काम । रहूँ बेकाम दाहिने-बाम ॥
फोड़ लूँ आँख, कटा लूँ नाक । छींक दूँ और जमाऊँ धाक ॥
करूँ औरोंकी यात्रा भंग । खुशीसे कर दूँ सबको तंग ॥
हुआ है शौक आजकल एक । धरी है मनमें अपने टेक ॥
बनूँ मैं लेखकगण-सिरमौर । बदल दूँ लिखनेका सब तौर ॥
व्याकरणका सिर कर दूँ कलम । छंदपिङ्गल भी कर लूँ हजम ॥
धड़ाधड़ कविता हो तैयार । लगे लेखोंका भी अम्बार ॥
न लिखनेका है मुझे शऊर । मगर जीमें है भरा गुरूर ॥
दिखायेगा जो मेरी भूल । डाल दूँ उसकी आँखों धूल ॥
मिले जो दाम । कहीं जजमान । निकाले पत्र, बढ़ा दे मान ॥
बनूँ मैं उसका सम्पादक । बजा दूँ ढोल-ढाक ढक-ढक ॥
कहाँसे लेकर रोड़ा-ईंट । छाप दूँगा कागज़की छींट ॥
बताऊँ साधु उसे, जो चोर । साधुको कह दूँ डाकू घोर ॥
गुणीको गाली दूँ बेरोक । न इसका मनमें लाऊँ शोक ॥
अकड़कर चलूँ नित्य मैं राह । जगत्में किसकी है परवाह ?
आजकल मचा महा अन्धेर । लगा है लेखक-गणका ढेर ॥

वर्णमाला-भरका ही ज्ञान।
दिला देता है सम्प्रति मान॥
इसीसे मुझ-सा लण्ठ लबार।
चलाता हिन्दीका अखबार॥

जले दिलके फफोले।

भारतमें हुए बड़े-बड़े बेईमान।
काम करा लें, टका न देवें, और करें हैरान॥
कोई देशके भक्त बनें औ कोई हिन्दी-प्रेमी।
कोई धर्म-धुर, कोई सुधारक, बन जाते सुमहान॥
काम पड़ेपर पीठ दिखावें, चंदा पब्लिकका खा जावें।
बगुला-भगत बने फिरते हैं, बड़े-बड़े विद्वान॥
कोई पत्र-सम्पादक बनते, असहयोगका बाना धरते।
आप अदालतमें धक्के खा, तनिक न होते म्लान॥
औरोंको उपदेश करेंगे, आप चैनसे मौज करेंगे।
'दे दो' 'दे दो' कहते फिरते, आप न देते दान॥
हिन्दीके उद्धार-करैया, बहुतेरे प्रकाशक भया।
हिन्दी प्रेमीपनका दम भर, काटें सबके कान॥

बावासे बाबू अच्छे हैं। कहीं बढ़-चढ़कर सच्चे हैं॥
दुरंगी चाल नहीं चलते। अन्तमें हाथ नहीं मलते॥
छिपे रुस्तम हैं ये पण्डे। धर्मको मारें ये डण्डे॥
महन्थी पाकर मन्दिरकी। चाल चलते हैं बन्दरकी॥
नरकके कुत्ते बन जाते। काम औ लोभ मोह-माते॥
न कोई पाप बचा इनसे। न कोई काम छुटा इनसे॥
पिये हैं दारू, ताड़ी, भंग। लिये फिरते हैं रण्डी संग॥
गेरुएकी टट्टीकी ओट। भयानक कर जाते हैं चोट॥
कभी जो खुल जाती है पोल। ढोलसे नहीं निकलता बोल॥
जूतियाँ चाँदीकी चलतीं। आपदाएँ तब हैं टलतीं॥
न कहता फिर कोई है बात। वही फिर दिवस, वही फिर रात॥
वही फिर रङ्ग रँगीला साज। वही जो कल था, फिर है आज॥

बचाओ राम! महन्तोंसे।
नरकके कीड़े—सन्तोंसे॥
लगा दो इनके मुँह स्याही।
बना दो नरक राह-राही॥

महन्त-रामायण ।



दोहा ।

चित्रकूटके घाटपै, भइ लण्ठनकी भीर ।
बाबा खड़े चला रहे, नैन-सैनके तीर ॥

चौपाई ।

सन्त-महन्तनकी अस करनी । जिमि लबार-लण्ठन-आचरनी ॥
भूखनि मरहिं गृही बेचारे । मालपुओंके भोग हमारे ॥
घास-पात जो खाइ अघावैं । कामदेव नित तिनहिं सतावैं ॥
पुनि कस पूछसि बात हमारी ? जग-जाहिर है लीला सारी ॥
'माई-माई' कहत पुकारी । सुन्दर नारि निकट बैठारी ॥
लोभ लाभको जाल बिछायो । औसर देखि क्रोध दिखरायो ॥
कल बल छलसे वसमें लाई । करी बात सबही मन-भाई ॥
जदपि कहैं बाहरते माई । मन महँ समुझैं किन्तु लुगाई ॥
मूँड मुँडाइ भये सन्यासी । किमि करिहौं नहिं सत्यानासी ?
लाज सरम सब धोइ बहाई । हम क्या जानैं नारि पराई ?

दोहा ।

बेटा बेटी है नहीं, जो कहुँ ब्याहन जाय ।
तौ पुनि रखि का चाटिहौं, मान आयरू आय ?

चौपाई।

पाली रण्डी और रखाई। मठमें अपने एक लुगाई॥
रण्डीने जूठा खिलवाया। धर्म धूल मेरा मिलवाया॥
पर प्रसाद गुनि हिय हरखायो। चाबि चाबि तेहि जूँठन खायो॥
बाप हमारे जो कहुँ हैं हैं। दादा परदादा जो ह्वै हैं॥
सीधे पा जहहैं बैकुण्ठा। धंस-बीज जन्मा मैं लण्ठा॥
पढ़्यो-गुन्यो अच्छर नहिं एको। काम-काज सीख्यो नहि नेको॥
बाप मरा अरु मातु सिधारी। फूटेउ-करम मिली नहि नारी॥
भीख माँगते आइ बगाला। गले डारि मोटी-सी माला॥
भस्म रमाइ जगाइ अलखको। हथियायो मन्दिर औ मठको॥
अब तो निन कटती है चाँदी। बीस बहु बत्तिस हैं बाँदी॥

दोहा।

वाजिद अली नवाबसा, नित भोगूँ मैं भोग।
पास फटकते हैं नहीं, कभी सोक औ रोग॥

चौपाई।

कितनी नारि बिगारी हमने। माया बहुत बटोरी हमने॥
बहुत दिनापर भण्डा फूटा। बना-बनाया गढ़ है टूटा॥
ना जानैं यह कौन सतीको। आइ पडी है सत्यवतीकी॥
लाज लुटी जाती है मेरी। ढोलक फूटा चुप है भेरी॥

बड़े सोचमें पड़े, करूँ क्या ? कैसे बच जायेगी लाज ?
कैसे मुँह दिखलाऊँ जगमें ? गिरी गगनसे कैसी गाज ?
बड़े भाग्यसे अवसर आया, हुआ गिरफ्तारीका ज़ोर।
वह भी पकड़े गये मचाकर 'गाँधीजीकी जय'का शोर॥
वह भी ख़ासा मेलाही था, पूरी थी भेड़ियाधसान।
सच्चा झूठा कौन देखता ? सत्तूमें मिल गया पिसान॥
माफ़ किया लोगोंने उनको, यों जब जाते देखा जेल।
समझ लिया लोगोंने इसको, करनीकी भरनीका खेल॥
आनेपर जब कांगरेसने, जूतोंसे करके आदर।
निकाला अपने दलसे, भागे अपना मुँह लेकर॥
कुछ दिन कर अज्ञातवास, मन मारे बैठे थे चुपचाप।
जैसा विषका दाँत टूट जानेपर हो जाता है साँप॥
मालदार दो-चार फँसे औ मिले मतलबी पक्के यार।
खड़ी कम्पनी हुई ठाटसे, निकला हिन्दीका अखबार॥
गरमागरम मसाला भरकर, चुन चुन गालीकी बौछार।
करने लगे नये सम्पादक, छिप-छिपकर धनियोंपर वार॥
दिये किसीने चार-पांच सौ, मिले कहींसे पाँच हज़ार।
चूल्हे-भाँड़ पड़े दुनिया-भर, उनका तो है बेड़ा पार॥
कभी नरम-दलके बन जावें, कभी गरम-दलके अवतार।
कभी ख़ुशामद, कभी डपटसे, चलते हैं सब कारोबार॥

आज करें तारीफ किसीकी, कल कर देवें निन्दा घोर।
साधु बना देते हैं उसको, जिसको दुनिया कहती चोर
माल मारनेकी आशापर तारीफोंके बाँधें सेतु।
नहीं प्रयोजन और किसीसे, रखते केवल धनसे हेतु॥
कम्बख्ती फिर आयी इसमें, जेल हुई जब दूजी बार।
अब तो नामी हुए जगतमें, बने सभीके हैं सरदार॥
लौट जेलसे खेल बनाया, अपना काम लिया है साध।
तक-तक तीर निशाना मारे, जैसे बनका कोई व्याध॥
धर्म-नीति औ राजनीतिके बने आप हैं ठेकेदार।
और हुए साहित्य-क्षेत्रके, पूरे आप इजारेदार॥
ऐसी हवा चली चौवाई, चारों ओर जमी है धाक।
सभी उन्हींके पैर पूजते, सब चाटें तलवेकी खाक॥
ऐसे रिश्वतखोर, अर्थके दास, जहाँ पाते आदर।
मैली होने क्यों न देशकी, धुली हुई उज्ज्वल चादर?
टका धर्म है, टका कर्म है, टका स्वर्ग है उनका एक।
टका कमाना ही उनके जीवनकी है सर्वोत्तम टेक॥
भोले-भाले भ्रममें भूले देशभक्त इनको ही जान।
छुरी छिपाये रहते हैं ये, काटें नित सबहीके कान॥
राम! बचाना इस मायासे, छायासे भी करना दूर।
भण्डा इनकी कपट कलाका, फूट देना अब चकनाचूर॥

इन्होंने उनको भी बदनाम—किया, जो सच्चे हैं निष्काम ॥
धराकर अपना त्यागी नाम। कमाया हर सूरतसे दाम ॥
दया हो राम! दयाके धाम! न पैदा हों ऐसे निष्काम ॥
गे कपड़े न ठगें अब और। रंगे स्यारोंका बदलें तौर ॥

दाढ़ी-चोटी-सम्मेलन।

"मिला दो चुटिया-दाढ़ीको। पाट दो गहरी खाडीको ॥
फूँक दो प्रीति-रीतिका शंख। काट दो वैर-भावका पङ्ख ॥"
यही उपदेश लीडरोंका। मान, दल चला गीदड़ोंका ॥
साधकर असहयोगका योग। हुआ हिन्दू-मुसलिम संयोग ॥
मिली बस चुटियासे दाढ़ी। खींच ले चली देश-गाड़ी ॥
नामको रहा नहीं कुछ भेद। मुसल्माँ लगे मानने वेद ॥
लगे हिन्दू कुरान पढ़ने। मियाँ साहब पुराण पढ़ने ॥
खिलाफ़तकी आफ़त निज मान। किया हिन्दूने चन्दा दान ॥
कमेटी लगी जोर चलने। शत्रु सब लगे हाथ मलने ॥
मियाँने गोरक्षाका बाज। सुनाया, खोला दिलका राज ॥
बुरी गो-हत्या बतलायी। बात हिन्दूके मन भायी ॥
मगर यह सब थी पोलमपोल। खोखला था भीतरसे ढोल ॥

बड़े हत्यारे ये निकले। कृतघ्नी, घोर नीच निकले॥
इसीसे भूल सकल उपकार। हमींपर करते हैं वे वार॥
मान-धन सतियोंका हरते। प्राणका नाश किया करते॥
अभी तो कलकी ही है बात। किया दिल्लीमें जो उत्पात॥
लखनऊकी बारी आयी। तबाही हिन्दूपर आयी॥
लगे हाथों देखा कोहाट। जहाँका बिगड़ा सारा ठाट॥
वहाँके लुटे सभी हिन्दू। जान ले भगे सभी हिन्दू॥
कभी महलोंमें जिनका वास। भरी दौलत थी खासी पास॥
चने मोहाल उन्हें अब हैं। दिगम्बर आज बने सब हैं॥
दे रहे मूँछोंपर हैं ताव। मियाँजीका पूरा है दाँव॥
दिखायी फिर नादिरशाही। मचाकर यों गुण्डेशाही॥
दाढ़ी-चोटीका नकली मेल। मिट गया, निकला पूरा खेल॥
साफ अब खाका उतरा है। ढहा नकली चबूतरा है॥
लगायी आग, मूर्त्ति दी तोड़। मियाँने हिन्दूका सर फोड़॥
मनाते हैं अब खुशियाली। दे रहे हिन्दूको गाली॥
महात्माजी करते उपवास। देशको सुनकर होता त्रास॥
मगर क्या पिघलेंगे गुण्डे? हुए ये मोटे मुसटण्डे॥
छोड़कर लीडर-गणकी आश। छिन्न कर दुर्बलताका पाश॥
सभी हिन्दू बलवान् बनो। भीम-अर्जुन-सन्तान बनो॥
बनो हे हिन्दू! तुम बलवान। इसीसे राजी हो भगवान॥

३

तुम्हें हिन्दू रहने देंगे। किसी विधिसे जीने देंगे ॥
दिखा दो फिर प्रताप-सा ताप । शिवाजीका-सा पुनः प्रताप ॥
मिट गयी जब नौरँगशाही । रहे कबतक गुण्डेशाही ?

वजारतका मर्सिया ।❀

या खुदा ! कोई ग़रीबोंका मददगार नहीं ।
कोई दिलदार नहीं, कोई है ग़मख्वार नहीं ॥
हमने चाहा था, वजारतके मजे हम लूटें ।
दास पार्टीसे इसीसे था किया प्यार नहीं ॥
दम-ब दम चूमते थे हम कदम हुक्कामोंके ।
मुल्कके साथ तो चलनेको थे तैयार नहीं ॥
दिलमें था ख्याल यही, क्या करेंगे अहलेवतन ?
इनकी सरकार नहीं, कोई इख्तियार नहीं ॥
इस लिये साथ दिया हमने गोरे साहबका,
सोचा, इस कूचेमें गुल ही खिले हैं, ख़ार नहीं ।

❀ बङ्गाल-कौन्सिलसे वजीरोंका वेतन नामंजूर होनेपर दोनों वजीरोंके पदत्यागपर लिखी गयी पंक्तियाँ ।

पर दिया आज जमानेने हमें वह झटका।
 औंधे मुंह गिर पड़े हैं, कोई आज यार नहीं॥
खाकमें मिल गये चौंसठ हजार सालाना।
 हौसले पस्त हुए—क्या यह नागवार नहीं?
मुंह छिपाये हुए, भागे हुए हम फिरते हैं।
 अब किसीको भी हम दिखलायेंगे रुखसार नहीं॥
हो बुरा दासका, नेहरूका, उनकी मजलिसका।
 गर न होते ये तो मिलती हमें फटकार नहीं॥
या खुदा! तू ही बचा लेना हमें गर्दिशसे।
 अब तो कर सकते किसी औरसे इसरार नहीं॥
देखकर आज वजारतका जनाजा निकला।
 दम निकलना भी तो अब है जरा दुश्वार नहीं॥
इस बुरी मौतसे हमको बचा दे या मौला।
 वरना तुझसे भी रहा कोई सरोकार नहीं॥

नानीकी कहानी।



वाह, मेरा बुढ़िया नानी। जगत्-भरकी हो गुरुआनी॥
तुम्हारे लाखों चेले हैं। गलीमें जैसे ढेले हैं॥
तुम्हारे करतब न्यारे हैं। निराले ढङ्ग तुम्हारे हैं॥
थाह पाना कुछ नानीकी। खोपड़ी परम पुरानीकी॥
नाकसे चना चबाना है। नहीं कुछ आना जाना है॥
हितैषी नानी बनती हैं। तभी तो कान कतरती हैं॥
प्यार जब ये दिखलाती हैं। हमें तब जूड़ी आती है॥
जपें जब नानीजी माला। बनें आफतका परकाला॥
न नानी सूधी गैया हैं। शेरको सच्ची मैया हैं॥
भेड़की खाल ओढ़ लेतीं। सिंहिनी-भाव छिपा लेतीं॥
इसीसे काम चलाती हैं। जगत्-भरको भरमाती हैं॥
हमारे सीधे बाबाको। लँगोटी-धारी बाबाको॥
फंसाया अबके नानीने। चलाया चरखा नानीने॥
रङ्ग कुछ गहरा लायेंगी। ढङ्ग अद्भुत दिखलायेंगी॥
"बनूंगी फिर भी गुरुआनी।" बात यह दिलमें है ठानी॥
मिलाने सबको जाती हैं। फूटका जाल बिछाती हैं॥

सुनहला मृग इसको जानो। नया यह लटका है, मानो॥
बड़ी उस्तानी नानी हैं। न महिमा सबने जानी है॥
जानते हैं कुछ-कुछ नाती। इसीसे नानी घबरातीं॥

अँखियाँ अँटकीं।⊛

(१)

देश सुधार, समाज-सुधारकी बातें करें चटकी-मटकी।
रङ्ग नवीन सदा बदले, दिखलावें कला ये महा नटकी॥
खद्दर-चद्दर, भेष दरिद्दर, देशकी भक्ति भरें टटकी।
देश जहन्नुम जाय भले, चदा-धनपर अँखियाँ अँटकीं॥

(२)

रूप जनाने बनाय करें मरदानेसी बात सदा टटकी।
मेल-मिलापकी बातें करें और घातें करें ये खटापटकी॥
देखि निराले नये रँग ढङ्ग रहैं सबकी मतियाँ भटकी।
रङ्ग दुरंगे तजैंगे कबे, यह देखनको अँखियाँ अँटकीं॥

⊛बिहार-प्रांतीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन (मुजफ्फरपुर)में समस्यापूर्त्ति।



कविताके नियमोंका मुझको न पता है।
स्वाभाविक कवि विरला ही हो सकता है।
कवि होकर निकला मातृ-गर्भसे मैं हूँ।
मुझ-सा है जगमें कौन? एकता मैं हूँ॥
यदि काव्य-शास्त्रकी बात चलाये कोई।
यदि छन्द शास्त्रका नियम पूछता कोई॥
तो मुँह बा देता, आँख नचाता, हंसता।
मैं झटपट उससे अटपट बातें कहता॥
बस गाल बजाना, बात बनाना आता।
औरोंपर झूँठा रोब जमाना आता॥
मैं कवि हूँ, मैं ही कवि हूँ,—लासानी हूँ।
मैं काव्य-जगत्का राजा औ रानी हूँ॥
राजा बनकर मैं रोब जमाता फिरता।
रानी बनकर मैं मटक-मटककर चलता॥
मैं अपना आसन सबके ऊपर जानूँ।
कवियोंका हूँ सिरताज, यही बस मानूँ॥
मैं कालिदासका छोटा भाई बनता।
हिन्दीके कवियोंको मैं क्या कुछ गिनता?
सच पूछो तो मैं चेला सबको जानूँ।
गुण अपने, अपने मुँहसे नित्य बखानूँ॥

इससे कितनोंके दिलपर पड़े फफोले ।
    क्या चिन्ता है ? जिसको रोना है, रो ले ॥
जब सरस्वतीकी खास मिहरबानी है ।
    दुनिया मेरे आगे भरती पानी है ॥
जबतक हिन्दीके पत्रोंकी है छाया ।
    तबतक तो मेरी बनी रहेगी माया ॥
मैं साफ आँखमें धूल झोंक डालूँगा ।
    कर सम्पादकसे मेल, माल मारूँगा ॥

लीडरावतारः ।



कैलास शिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शंकरम् ।
लीडराणां तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १ ॥

भाषाटीका ।

रमणीय कैलास पर्वतके शिखरपर बैठी हुई गौरी—जो हैं सो जाय करके—शिवजीसे पूछती भई कि हे महाराज ! मैं लीडरोंका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ, सो जाय करके आप मुझे सुनाइये ॥ १ ॥

शंकर उवाच ।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि लीलां रम्यां सुखप्रदाम् ।
लीडराणां महापुण्यां ज्ञानवैराग्यदायिनीम् ॥ २ ॥

भाषाटीका ।

शिवजी कहते भये कि हे देवि ! जो है सो जाय करके सुनो, मैं तुम्हें बड़ी ही सुन्दर और सुख देनेवाली, पुण्यसे भरी हुई, ज्ञान और वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली लीडरोंकी लीला सुनाता हूँ ॥ २ ॥

कलियुगे भारते देशे श्वेतद्वीपसमागता ।
कोटबूटधरा लोका राज्य कुर्वन्ति वै सुखम् ॥ ३ ॥

भाषाटीका ।

कलियुगमें, भारतवर्षमें, जो है सो जाय करके, सफेद टापूसे आये हुए कोट-बूट धारण करनेवाले लोग, जो है सो जाय करके, बड़े सुखसे राज्य करेंगे ॥ ३ ॥

भारतीया नराः सर्वे तेषां चरण पूजका ।
चाटुकारा भविष्यन्ति श्वेताङ्गभयपीडिता ॥ ४ ॥

भाषाटीका ।

हे देवि ! जो है सो जाय करके, भारतके सब लोग उनके पाँव पूजनेवाले और खुशामदी टट्टू बन जायेंगे और सदा गोरे चमड़ेके डरसे डरते रहेंगे ॥ ४ ॥

अवलोक्य दुर्दशां ह्येषां भगवान्कमलापतिः ।
गान्धीनाम महात्मानं प्रेषयिष्यति भूतले ॥ ५ ॥

भाषाटीका ।

इनकी ऐसी जो है सो दुर्दशा देखकर भगवान् लक्ष्मीनाथ गाधी नामके महात्माको पृथ्वीपर भेजेंगे ॥ ५ ॥

निर्भयो सदयो गाधी, अहिंसाव्रतमुद्वहन् ।
भारतोद्धारणं कर्त्तुं तत्परो भविता लघु ॥ ६ ॥

भाषाटीका ।

वह निर्भय और सदय गाधी जो है सो जाय करके, अहिंसा व्रत धारण कर, भारतका उद्धार करनेके लिये शीघ्र ही तैयार हो जायेगा ॥ ६ ॥

तस्मिन् काले महादेशे भारते वायुमण्डलम् ।
क्षुब्धं मेघ-समाच्छन्नं भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥

भाषाटीका ।

उस समय जो है सो जाय करके इस बडे भारी भारत-देशका वायु-मण्डल क्षुब्ध हो उठेगा और बादलोंसे ढक जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

शासका मुह्यमानास्तु यास्यन्ति निभृतालयम् ।
पश्यन्तो हीदृशीं देशे लोकानां शुभजागृतिम् ॥ ८ ॥



भाषाटीका ।

देशमें लोगोंकी ऐसी शुभ जागृति देखकर, जो है सो जाय करके, शासक लोग मोहमें पड़कर सूने घरोंमें जा छिपेंगे ॥ ८ ॥

अस्मिन् काले भविष्यन्ति गेहे गेहे चतुष्पथे ।
लीडराख्या नरा सर्वे शुक्र-खद्दर-धारिणः ॥ ६ ॥

भाषाटीका ।

इसी समय जो है सो जाय करके घर-घर और गली गली, हर चौराहेपर, सफ़ेद खद्दर पहने सब लोग लीडर कहलाते हुए नज़र आने लगेंगे ॥ ६ ॥

स्वार्थत्याग महापुण्य वहन्तो ह्यु त्तमं व्रतम् ।
अहि सा धारयिष्यन्ति सर्वभूतहिते रता ॥१०॥

भाषाटीका ।

बड़े पुण्यसे भरा हुआ स्वार्थ-त्याग-रूपी उत्तम व्रत धारण करके जो है सो ये सब प्राणिमात्रके हितमें लगे हुए अहि साका व्रत ग्रहण करें गे ॥१०॥

पार्वती उवाच ।

त्वरया वद देवेश । देश दुर्भाग्य-दु खिता. ।
लीडरा कि विधास्यति व्रत सत्यं चिकीर्षव ॥११॥

भाषाटीका।

पार्वतीने कहा,—हे देवताओंके देवता! आप जो है सो जाय करके शीघ्रही मुझे बतलाइये कि ये देशके दुर्भाग्यसे दुःखित लीडर लोग सत्यव्रतकी अभिलाषा करते हुए क्या-क्या करेंगे? ॥ ११ ॥

शंकर उवाच।

शक्नोमि वक्तुं न हि लीडराणां यथार्थरूपं शृणु देवि सत्यम्।
अशेषलीलाचरितानि तेषां सहस्रजिह्वो कथनेऽप्यशक्तः ॥१२॥

भाषाटीका।

शिवजीने कहा,—"हे देवि! जो है सो जाय करके इन लीडरोंका यथार्थ रूप मैं वर्णन नहीं कर सकता। इनकी लीलाएं और चरित्र अशेष अर्थात् जो है सो अनन्त हैं। इनका वर्णन करनेमें सहस्र जिह्वाएं रखनेवाले शेष भी समर्थ नहीं हैं ॥ १२ ॥

प्रगृह्य चन्दाधनमप्यकातरा
स्वदेश-कल्याण-निमित्तमात्रकम्।
क्रमेण सर्वं निजलालसाग्नौ
दास्यन्ति होतार इवाग्निकुण्डे ॥ १३ ॥

भाषाटीका।

चंदेका धन, अकातर भावसे, स्वदेशके कल्याणके ही

दरबारमें जो बड़े-बड़े राक्षस-वीर थे, वे ही आजकल धूर्त लीडरोंके रूपमें घूम रहे हैं। इनसे ठगा जाकर वह महात्मा अपनी सारी शक्ति खो देगा ॥ १७ १८ ॥

ये त्यागिनः सत्यसन्धास्तेऽपि यान्ति पराभवम् ।
नष्टे प्रभावे लोकाना शासका उग्रमूर्त्तय' ॥
पुन पुन प्रजापुञ्ज' पीडयिष्यन्त्यकातरा. ।
लोकाना ताडनं सम्यक् प्रेक्षयिष्यन्ति लीडराः ॥१९-२०॥

भाषाटीका ।

(इन्हींके करते) जो त्यागी और सत्यसन्ध होंगे, वे भी पराभवको प्राप्त होंगे और लोकसत्ताका प्रभाव नष्ट हो जानेपर शासक उग्रमूर्त्ति धारणकर बार-बार प्रजापुञ्जको पीडित करेंगे तथा लीडरगण जो है सो, लोगोंको दमनकी चक्कीमें पिसते हुए टुकुर-टुकुर देखा करेंगे ॥१९-२०॥

कदाचिदपि कर्त्तव्या भारतोद्धारकल्पना ।
न तावद् देवि ! कल्याणि ! यावद्धूर्त्ता हि लीडरा ॥
लोकाञ्च वञ्चयिष्यन्ति वदन्तो प्रियभाषणम् ।
वहन्त शुकवेश तु हृदि हालाहल विषम् ॥२१-२२॥

भाषाटीका ।

हे देवि ! हे कल्याणि ! जबतक जो है सो ये धूर्त्त लीडर लोगोंको मीठी-मीठी बातें सुनाकर अर्थात् जो है सो लच्छे-

द्वार व्याख्यान दे-देकर, हृदयमें हलाहल-विष रखते हुए भी सफेद-पोश बने हुए ठगते फिरेंगे, तबतक हरगिज़ भारतके उद्धारकी कल्पना नहीं करनी चाहिये ॥२१-२२॥

इति श्रीपत्तमानपुराणे लीडरावतार-वर्णने पार्वती-शंकर संवादो नाम प्रथमोऽध्याय ॥



कच्चा चिट्ठा

आजतक मौजसे बहार लूटि वाह-वाह,
सबसे करायी पिटवायीं घोर तालियाँ।
झाड़ झाड़ वक्तृता सुनाइ देसभक्ति-राग,
गोरी सरकारको सुनायीं खूब गालियाँ॥
रेख नहिं भीनी, अभी उम्र है नवीनी, तऊ
लीनी सब देससे बधाई अरु डालियाँ।
धाँस-पाँस कण्ठ खोल आफत खिलाफतकी,
सबको सुनायी औ चलायी चक्रचालियाँ॥१॥
कोट ड्राट खद्दरको, टोप गाँधी बाबाको-सो,
धोतिहू सु-मोटी या लँगोटी बाँधि लीनी है।

५

सूधो-सो सुबेस यह देखि देस मोहि रह्यो,
मीठी मीठी बातनमें देस-भक्ति भीनी है।
साँचे स्वार्थ त्यागी देस-सेवकको पूछै कौन?
लण्ठ औ लबारनकी लीला परबीनी है।
याही हेत देस सब आँखि मूँदि-मूँदि निज
बार-बार थैलियाँ इन्हींकी भरि दीनी है ॥२॥
जन्म धारि हिन्दू-कुल जाइ जवनोंसे मिले,
आफत खिलाफतकी आपनी बनाई है।
नाम लिखवायो जाति-पाँति तोड़कोंमें जाइ,
खाइ सब संग चुटिया भी कटवाई है॥
मौलवीके सङ्ग इकरङ्ग भये पण्डितजू,
दङ्ग दुनिया है, धूम चारो ओर छाई है।
एकताके धोखे एकाकार करि याही भाँति
हिन्दू-जनताको खूब जूतियाँ खिलाई है ॥३॥
चन्दा दिलवाइ हिन्दुआनसों खिलाफतको,
मेल बढवायो दुहूँ जातिमे सवाई है।
जोरसे कमेटी चलवाई औ बनाई बात,
घात हू लगाई निज जेबहू भराई है॥
जा दिनते दूरि भई आफत खिलाफतकी,
वा दिनते साँसत हमारी जान आई है।

हिन्दुनके नेता शुद्धवेता बने मारे फिरें,
मौलवीने आरती हू बन्द करवाई है ॥४॥
लेतो जो खिलाफतको पच्छ नहिं गाँधी तब,
दाढ़ी-चुटियाको मेल कैसे को करावनो ?
देख बिखराइ याही मेलको भड़कदार,
कौन सरकारको बेहद डरपावतो ?
गोवध-विरुद्धमें बताओ कौन आधी बात,
मौलवी-मियाँसों सपनेमें कहलावतो ?
बारह महीनेमें स्वराज मिलिबेकी आस,
कौन सारे देसके हियेमें उपजावतो ? ॥५॥
किन्तु यह प्रीत नहीं, भीन बालूहो की रही,
रीत जो पुरानी रही वाही फेरि प्रगटी ।
लम्बी-चौड़ी बात वो अहिंसा-व्रत-पालनकी,
धूलमें मिली है औ चली है लगी-लिपटी ॥
हाथा पाई, मार-पीट, लाठी तलवार मार,
धारि हथियार होन लागी डाँट-डपटी ।
नेता-गण खड़े-खड़े देखते तमासे रहे,
जनता कटाइ नाक बनि गई नकटी ॥६॥
खाइ खाइ चन्दा-धन मोटे अलमस्त बनि,
घूमत हैं लाखनमें धाक-सी जमाई है ।

धारिकै अहिंसा छिपे हिंसाको प्रचार करैं,
मेलको हिमायती है रार मचवाई है॥
गुण्डे करैं लूटपाट, हिन्दू सब खावैं लात,
कहाँ है स्वराज? जान आफतमें आई है।
पूछें जाइ नेतनसों हिन्दू औ मुसलमान,
मेलकी दीवार वह कौन ढहवाई है? ॥७॥
कोऊ लेवैं मोटर, बनावैं घर-द्वार कोऊ,
खावैं धन चन्दाको निकाला नया धन्दा है।
नेक ना लजावैं औ बनावैं बात भाँति-भाँति,
ऐसो बनि जावैं ज्यों खुदाका प्यारा बंदा है।
रामही बचावैं ऐसे ढोंगी देसभक्तनसों,
अजब-अनोखा विकराल जाल-फन्दा है।
ऊपरसों राम-राम, भीतरसों सिद्ध काम,
बाहरसों साफ-साफ भीतरसों गन्दा है ॥८॥

रिलीफ-कमेटी।



रात दिन रामसों मनावत हौं माय नाइ,
बाढ़ कहूँ आवे या दुकाल परियो करै।
धाइ धाइ लोग फिरैं भागत बिचारे सब,
नारि-नर नित्य बिल्लाइ मरियो करैं।
लम्बी-चौड़ी बात करि जाइ देस-देसनमें,
चन्दा लिखवाइ हम सेवा करिबो करैं।
सेवा करि मेवा पाइबेके हेतु मेरे प्रान,
अति अकुलात नहि चैन लहिबो करैं॥१॥
सेवक सुधारकको चाकर चतुरको हौं,
दास देसभक्तनको नाम ही हमारो है।
जाइ-जाइ द्वार-द्वार भीख माँगि बार-बार,
दीननकी सेवा एक कामही हमारो है।
जोलिके रिलीफ*की कमेटी हम चीफ+ बने,
मूढ़ कहैं थीफ+ करैं मान न हमारो है।

---

* Relief (रिलीफ्) कष्ट निवारण।
+ Chief (चीफ) प्रधान।
+ Thief (थीफ्) चोर।

धूलि झोंकि आँखिनमें लोगनकी चौड़े आम,
ढोंगके निराले ढङ्ग नित्य बतलाओ तो ॥७॥

रण्डा-रहस्य ।

ठेकेदार धर्मके, सुधारक समाजके हैं,
नामी अगुआ हैं औ गुलामीके नसैया हैं ।
एड़ी और चोटीको पसीना एक होत जात,
रात-दिन दीननके दु खके हरैया हैं ।
ऐसो अवतार उपकारको अनोखो और,
कोऊ ना दिखात देस नैयाके खेवैया हैं ।
याही हेत भारतकी रण्डा-गन जानत हैं,
आप ही हमारे माय बाप अरु भैया हैं ॥१॥
झाडि-झाडि वक्तृता सुनाइके रुलाइ डारैं,
दसा विधवानिकी दिखाइ डरपावते ।
वेद औ पुरान छान-छानके सुनावत हैं,
"ब्याह विधवाके सब शास्त्रन बतावते ।
"आप जो करत नर ब्याह चार-पाँच-पाँच,
क्यों न नाव राँड़की हैं पार वे लगावते ?

"बूढ़े सेठ घूसटविहारीमल लाज तजि,
साठ साल ऊपरमें व्याह हैं रचावते ॥२॥
"ऐसे रँडुओंको मिलवाओ विधवासे जाइ,
जोड़ी युवकोंकी युवतीसे मिल जाने दो ।
"जाके घर बेटी औ पतोहू विधवा हैं पड़ी,
वाके घर नवलकिसोरी मत आने दो ।
"बूढ़ेकी बरातमें हजार विघ्न डालो भरु,
जूतियाँ भिगाइ वाके सीसपै जमाने दो ।
"बूढ़ो पावै षोडसी औरु षोडसीको घूसट है,
नेकु सरमाइ यहि समय न आने दो" ॥३॥
बात ये विवेकमयी सुनिकै निहाल भई,
रण्डा गन पुलकि असीसत अघावैं ना ।
देसके उधारक, समाजके सुधारक हैं,
जानिकै अभागिनिके मोद हिय मावै ना ।
आईं सब चरन पखारन सुधारकके,
लाज बस ये तो निज चरन बढ़ावैं ना ।
देखि-देखि पुण्यको तमासा यह लोग-बाग,
बाँटत बतासा गुन गाइ तृति पावैं ना ॥४॥
खोलि विधवाश्रम सुधारकने देस-देस,
पीटि दियो डंका निज कीरति-कमाईको ।

न भाती पाकशाला औ न भाता कूटना-पिसना ।
है भाता पाठ नावेलका,* कलमका रात-दिन घिसना ॥
हटाकर जाल घूंघटका, मिटाकर आँखकी लज्जा ।
है सुधरी नारियोंने अब, सजायी मेम-सी सज्जा ।
पुरुषसे लड़ रहीं अधिकारके हित नारियाँ जगकी ।
भला क्यों चुप रहेंगी देवियाँ इस वृद्ध भारतकी ?
इसीसे भूलकर प्राचीनता आदर्शकी अपने ।
यहाँ भी देवियाँ हैं देखतीं यूरोपके सपने + ॥
मगर भारतका उन्नत क्या बढेगा ऐसे करतबसे ?
हमारी देवियोंका मान बढ़कर है जगत्-भरसे ॥
हमारे ढंग निराले हैं, हमारी रीति न्यारी है ।
हमें लखकर चकित होता, सदा संसार भारी है ॥
हमारा तो भला होगा, न भूलें रूप यदि अपना ।
न छोड़ें रीतिको अपनी, न देखें औरका सपना ॥
पढे सब नारियाँ, विदुषी बनें, कर्त्तव्यको पालें ।
न सीखें किन्तु यूरपकी, निराले ढंगकी चालें ॥

---

* नावेल—उपन्यास (किस्से कहानीकी पुस्तकें)।

+ यूरोपकी मेमों की तरह पुरुषोंके बराबर अधिकार पानेको उत्सुक हैं। यही भाव है।

बनें गृह-देवियाँ वे तो, कभी मत लेडियाँ होवें ।
किसी दिन भूलकर प्राचीन मर्यादा नहीं खोवें ॥

सियाँ मिट्ठू के तराने ।

सूर्यकी ज्योति हमीं तो हैं । चाँदकी किरण हमीं तो हैं ॥
अजी ! हम देश-भक्त भरपूर । देश-सेवामें रहते चूर ॥
भलाई औरोंकी करते । रात-दिन जगके हित मरते ॥
रोब है गाँठा जनतापर । जमाना शैदा है हमपर ॥
हमारी जय-जय होती है । पैरकी पूजा होती है ॥
छिपी है पोल मगर अन्दर । पेटमें विष, बाहर सुन्दर ॥
अजी ! हम भारी हैं लीडर । असहयोगी हैं हम प्लीडर ॥
असहयोगी धन मारा माल । दिखाकर अद्भुत माया-जाल ॥
कमेटी खोल पचानी थी । पूँछ सबकी निज हाथों थी ॥
चकाचक चंदा लिखवाया । सफाया सबका करवाया ॥
पचानेमें क्या रक्खा है ? मज़ा जो हमने चक्खा है !
मार माल हजमना है । करोगा मिया-सामना है ॥

लेखक-प्रकाशक-संवाद ।



लेखक उवाच ।

लेखकोंके अन्न दाता आप हैं ।
सुख-विधाता शान्ति-दाता आप हैं ॥

आपका अवतार जो होता नहीं ।
लेखकोंका तो गुजर होता नहीं ॥

छापकर मेरी लिखी ग्रन्थावली ।
दी खिला मेरे हृदयकी है कली ।

इस लिये गुण-गान कर थकता नहीं ।
आपका यश-सिन्धु तिर सकता नहीं ॥

किन्तु लखिये, आज मेरी दुर्दशा ।
भाग्य-रेखा बन रही है कर्कशा ॥

इस लिये थोडी मदद कर दीजिये ।
डूबतेकी बाँह बस धर लीजिये ॥

हो गया मैं इन दिनों मुहताज हूँ ।
द्वारपर भवदीय आया आज हूँ ॥

मेरी रचनाएं जन-प्रिय खूब हैं।
आप उनसे लाभ पाते खूब हैं ॥
अश क्या मेरा नहीं उस लाभमें ?
चन्द टुकडे भी नहीं क्या भागमें ?
आप लेते लाख रुपये हैं जहाँ।
पाँच-दस दे दें मुझे भी तो वहाँ ॥

प्रकाशक उवाच।

खोपडीमें अक्ल क्या रखते नहीं ?
आँख रहते देख क्या सकते नहीं ?
है तुम्हारी खोपडी औंधी बडी।
हो रहे हो इस लिये ऐसे सिडी ॥
माँगते क्या खाक हो मुझसे भला ?
सिरके अन्दर खब्तका अंधड चला !
छापकर पुस्तक तुम्हारी ठाटसे।
यढके रुतया कर दिया है लाटसे ॥
सारे जगमें नाम भी तब हो गया।
मेरे करते मान-गौरव बढ गया ॥
क्या दिया पलटा मुझे इस कामका ?
मुस्तहक क्या हूँ नहीं ईनामका ?

कीं तुम्हारी शुद्ध सारी गलतियाँ ।
रातको दो-दो जलाकर बत्तियाँ ॥
प्रूफ देखे गौरसे बहुबार हैं ।
तब कहीं पुस्तक हुई तैयार है ॥
फँस गये रुपये हजारों पासके ।
अबतलक पूरा नफा न कमा सके ॥
फिर भी लेनेकी ठनी तब दिलमें है ?
जाओ बैरंग, चूहिया अब बिलमें है !
नाम-यश ले चाटना चटनी बना ।
माँग खाना भीख मुट्ठी-भर चना ॥
मुझसे पाओगे कभी धेला नहीं ।
जान लेना गुरु मुझे, चेला नहीं ॥

गोरखधन्धा।

हिन्दीकी दुनिया अजब हमारी भाई।
इसमें सबकी चल जाती है गुरुआई॥
याँ टके सेर बिकता खाजा, भाजी भी।
याँ पण्डित भी आदर पाता, पाजी भी॥
यह साम्यवादका अजब नमूना भारी।
लखकर होती है बुद्धि बिदा बस सारी॥
इससे पण्डितगण हैं घबराये भारी।
कारण, उनकी ही तो होती है ख्वारी॥
पर लण्ठदासकी पाँचों ही हैं घीमें।
उनको खुटका क्यों कुछ भी होगा जीमें?
वे सम्पादक बन पूजा करवाते हैं।
पर चिट्ठीतक गैरोंसे लिखवाते हैं॥
दे टके रोज लिखवाते वे कविता हैं।
सो काव्य-जगतके बन जाते सविता हैं॥
उनकी विद्या सब भाड़ेका टट्टू है।
पर जनता बाजाने उनपर लट्टू है॥

है धन्य-धन्यकी छूट हो रही भारी।
यश-कीर्ति-राशिकी लूट हो रही भारी॥
हैं चोर बहुत सम्प्रति ऐसे ही छाये।
हैं घोर मूर्ख, पर सम्पादक कहलाये॥
लिखवाते सब औरोंसे ही हैं भाई।
पर लिखवाई देते हैं आधी पाई॥
या चने चबेनेपर ही टरकाते हैं।
लेखकको लाखों चरके बतलाते हैं॥
लेखकको यशका भूखा जो लख पाते।
बस तारीफोंके सेतु बाँध भरमाते॥
"हैं आप बड़े प्रतिभाशाली हे भाई।
प्रतिभा 'रवीन्द्र' की मैंने तुममें पाई॥
है 'शरच्चन्द्र'-सी कला भाव-चित्रणमें।
'बंकिम' का-सा चातुर्य चरित्रांकणमें॥
हिन्दीमें बस हो भारतेन्दुके सानी।
है शैली अनुपम, बे-टक्कर, लासानी।"
यों चाटु-वाक्यका खोल खजाना भारी।
लेखकसे लेते रहते हैं बेगारी।
इस तरह फँसे हैं लेखक-गण मायामें।
सम्पादक करते मौज छत्र-छायामें॥

मदारी मियाँ।



बड़े सवेरे एक गाँवमें मियाँ मदारी आये।
बजा तुमाड़या जोर-जोरसे गीत उन्होंने गाये॥
लोग-लुगाई लगे देखने खेल अनूठे उनके।
बालक-बूढ़े सबही दौड़े करतब उनके सुनके॥
बाजीगर ये मियाँ अनोखे झोला उनका भारी।
बातें उनकी मीठी मीठी लगतीं सबको प्यारी॥
चिकनी चुपडी खूब सुनाकर गहरा रंग जमाया।
बाजीगरने उसी गाँवमे घर अपना बनवाया॥
गत तुमड़ीकी सुन-सुन करके बिगड़ी आदत सबकी।
श्रद्धा हुई सभीकी उनपर अजब अनोखे ढबकी॥
धीरे-धीरे मियाँ मदारी पञ्च बन गये पक्के।
उनके आगे बड़े-बड़ोंके छूट गये सब छक्के॥
लड़ा-भिड़ाकर सबको आपसमें पंचायत करते।
जुर्मानेकी रकम अदाकर थैली अपनी भरते॥
चलें जूतियाँ आपसमें ही, भाई-भाई लड़ते।
मियाँ मदारी उनके झगड़ेका निपटारा करते॥

निपटारा करते-करते ही किया सफ़ाचट सबका।
बदला लिया मियाँने सबसे ना जाने यह कबका?
भाई-भाईके झगड़ेका देख नतीजा ऐसा।
रोने लगे ग्रामवासी सब खो अंटीका पैसा।
मियाँ मदारी हुए गाँवके स्वामी सोलह आने।
बनकर उनके दास गाँवके लोग लगे पछताने॥
चतुर मियाँने अपने घरके लोग बुलाकर रक्खे।
अपनी रक्षाका प्रबंध कर मज़े मौजसे चक्खे॥
अपने नाते-गोतोंको तो मियाँ मदारी मानें।
जिनका सब कुछ छीना-झपटा दास उन्हींको जानें॥
नाटक न्याय-नीतिका दिखला ईश्वरको ठगते हैं।
मालिक बन जानेपर भी वह नटबाजी करते हैं॥
नहीं छूटती जिसकी जैसी कुछ आदत होती है।
सदा करैला कड़वा होता नीम तिक्त होती है॥
मियाँ मदारीके किस्सेसे सीख सीख लो भाई।
बुरी सदा होती है जगमें घरके बीच लड़ाई॥
घरकी फूट देख बाहरके लोग लूटने आते।
बन्दर-बाँट करें आ करके अपना रोब जमाते॥
फिर चिड़िया जब चुग ही लेगी सारी खेतीबारी।
वृथा कल्पना रोना-गाना उल्लू बनकर भारी॥

जोरू-गुण-गानम् ।



मूल—भार्या यस्य बल तस्य तस्य बुद्धिर्बलीयसी ।
भार्या यस्य गृहे नास्ति मरणं तस्य वै ध्रुवम् ॥१॥

टीका—जिसके जोरू है, उसीको बलवान् समझना चाहिये । बड़ी जबरदस्त अक्ल भी उसीमें होती है, जिसके जोरू है । जिसके घरमें जोरू नहीं, उसकी तो बस मौत धरी है ॥१॥

मूल—भार्या हि परमा सिद्धिः ऋद्धिर्भार्या समुच्यते ।
मूर्खोऽपि पण्डितश्रेष्ठ भार्या भक्ति-परायणः ॥२॥

टीका—जोरू ही बड़ी भारी सिद्धि है । वही ऋद्धि भी कहलाती है । यदि कोई मूर्ख भी हो और अपनी जोरूका खासा टट्टू बना हुआ हो, तो वह पण्डितोंमें भी श्रेष्ठ गिने जाने योग्य है ॥२॥

मूल—वृथा यौवन-सम्पत्तिः वृथा मर्त्ये हि जीवनम् ।
वृथा च भूषण रत्न यस्य भार्या न विद्यते ॥३॥

टीका—जिसके जोरू नहीं है, उसकी जवानी, दौलत, जिंदगी, भूषण, रत्न आदि सभी बातें बेकार हैं ॥३॥

मूल—वृथा विद्या वृथा शिक्षा वृथा भिक्षा वृथा कथा ।
एका भार्या विना लोके सर्वशून्या दरिद्रता ॥४॥

टीका—विद्या, शिक्षा, भिक्षा (भीख माँगकर पेट भरना) और कथा (यानी बोलनातक) भी (बिना जोरू-वालेके लिये) बेकार है। एक जोरूके विना सर्व-शून्या दरिद्रता ही छा जाती है ॥४॥

मूल—मंत्रदाता गुरुर्भार्या भार्या देहार्द्धभागिनी ।
शय्यागता प्रिया भार्या केन सा उपमीयते ? ॥५॥

टीका—जोरू मन्त्र देनेवाले गुरुके समान है। वह आधे शरीरकी हिस्सेदारिन है। शय्यापर विराजनेवाली प्यारी जोरूकी उपमा भला किससे दी जाये ? ॥५॥

मूल—भार्या हि सुखदा लोके मुक्तिदा मरणात्पर ।
शुभदा सौख्यदा भार्या भुक्ति भुक्ति-प्रदायिनी ॥६॥

टीका—जोरू इस संसारमे सुख देनेवाली और मरने बाद मुक्ति देनेवाली है। भलाई करनेवाली सुखदात्री भार्या भुक्ति-मुक्ति दोनों ही देती है ॥६॥

मूल—भार्याया चरण पूत सेवित येन नित्यश. ।
मूर्खोऽपि लभते ज्ञानं गृहशत्रुजयो भवेत् ॥७॥

टीका—जिसने नित्य जोरूके पाक कदमोंके नीचे नाक रगडी है, वह यदि मूर्ख भी हो, तो ज्ञानी बन जाता है

और घरके शत्रुओंपर (भाई-भतीजोंपर) विजय प्राप्त कर लेता है ॥७॥

मूल—अलंकार-प्रिया भार्या झणत्कारेण सौख्यदा ।
लोचनानन्ददात्री सा कर्णानन्दविधायिनी ॥८॥

टीका—जो जोरू गहने खूब पसन्द करती है, वह अपने गहनोंकी झनकारसे ही दिल खुश कर देती है। वह आँखोंको आनन्द देनेवाली तो है ही, कानोंको भी आनद देती है (गहनोंकी झनकारसे, यह तो आप समझते ही होंगे !) ॥८॥

मूल—गृहयुद्धे सदा भार्या भर्तुः पक्षावलम्बिनी ।
भ्रातृणां कलहे भार्या गृह-विच्छेदकारिणी ॥९॥

टीका—घरमें लड़ाई लगे, तो जोरू हमेश' अपने मियाँका ही साथ देती है, और भाई-भाइयोंमें कलह हो, तो जोरू जरूर उन्हें एक दूसरेसे अलग करा देती है ॥९॥

मूल—विच्छेद-जनितं सौख्यं विधाय सुखदा भवेत् ।
स्वच्छन्दं जीवनं तस्याः प्रसादादेव उच्यते ॥१०॥

टीका—इस तरह भाई-भतीजोंसे अलग होकर रहनेमें जो मज़ा है, उस मजेको चखाकर वह सुख देती है। फिर तो ऐसे स्वच्छन्द जीवनको जोरूकी ही समझना पड़ता है ॥१०॥

मूल—भार्यायाश्च प्रसादेन धन लब्धं मया पुरा।
नस्या पित्रालये प्राप्त विवाहे यौतुकं यदा ॥११॥

टीका—जोरूकी ही बदौलत मुझे कुछ समय पहले विवाहके अवसरपर उसके बापके घरसे दहेजके रूपमें धन मिला था। (यह भी तो उसीका इकबाल था, नहीं तो उसके बापके यहाँ मेरा किसी जन्मका कर्ज थोड़े ही बाकी था ?) ॥११॥

मूल—अद्यापि जनकस्तस्या धन मह्य ददाति च।
'घड़ीं' 'चश्मा'छड़ीं'दिव्या,'पैरगाड़ीं'सुशोभनाम् ॥१२॥

टीका—आज भी मेरी जोरूका बाप मुझे धन देता ही रहता है। कभी घडी, कभी चश्मा, कभी सुन्दर छड़ी और कभी मनमोहिनी पैरगाड़ी ॥१२॥

मूल—'फ़र्मायशानुसारेण' वाच्छतं मे प्रयच्छति।
तस्मात्कल्पलता भार्या सेवितव्या नरैं सदा ॥१३॥

टीका—वह बेचारी मेरी फर्मायशके मुताबिक चीज देती ही रहती है। इस लिये जोरूको कल्पवृक्ष जानकर मनुष्योंको चाहिये, कि उसकी सदा खिद्‌मत बजाते रहें—सेवा किया करें ॥१३॥

मूल—गौरांगाना शुभे राज्ये प्राप्ते कलियुगे तथा।
सतीत्व-रहिता भार्या सर्वदानन्ददायिनी ॥१४॥

टीका—कलियुगमें, गोरोंके पवित्र राज्यके जमानेमें, जिस जोरूमें 'सतीत्व' न होगा, वही सदा आनन्द देनेवाली होती है ॥१४॥

मूल—स्वाधीना सर्वकार्येषु 'मेम'-सज्जा-विभूषिता ।
नृत्ये गीते सभाया च त्यक्ता लज्जा यथाशुभा ॥१५॥
सा भार्या पतिदेवस्य सर्वमङ्गलदायिनी ।
'बालडान्से'* गता या हि 'लाट'-+ देवानुरञ्जने ॥१६॥

टीका—जो सब कामोंमें परम स्वतन्त्र हो, मेमका-सा ठाट रखती हो, नाचने-गाने और सभाओंमें आने-जानेमें जो मनहूस शर्मको पास भी नहीं फटकने देती हो, वही भार्या यदि लाट साहबको खुश करनेके लिये उनके "बाल-नाच"में भी शामिल हो गयी, तो समझ लो, कि उसके पति देवके चारों ओर मङ्गल-ही मङ्गल है ॥१५-१६॥

मूल—मुखरा त्यक्तलज्जा या दुर्विनीता सुशिक्षिता ।
उद्धता कथिता लोके नरै "भरदमारिनी" ॥१७॥
सैवाधुना हि लोकेऽस्मिन् पूजनीया नरै सदा ।
तस्माद्धन्या मया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥१८॥

---

* बाल-डान्स (Ball dance)—अंगरेजी नाच ।

+ लाट—लाट साहब ।

टीका—बोलनेमें जिसकी जुबान बेलगाम घोड़ीकी तरह सरपट दौड़ती हो, जो खूब पढ़-लिखकर भी पूरी छछीली और वैसी उजड्ड हो, जैसी औरतको लोग "मर्द-मारनी" कहा करते हैं, तो आजकलके ज़माने-में उसी औरतकी सब लोग क़द्र करते हैं। इसी लिये तो मेरी जोरू मेरे लिये पूजाकी चीज है और जानोजिगरसे भी बढ़कर है ॥१७ १८॥

वन्दना।

मूल—भार्ये! देवि! प्रसीद त्वं नमस्तुभ्यं करोम्यहम्।
संसार-सुख-सिद्ध्यर्थं नृणां भार्यैव केवलम् ॥१९॥

टीका—इस लिये हे जोरू-देवी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो; क्योंकि सांसारिक सुखों-की सिद्धिके लिये मनुष्योंको केवल जोरूका ही एक-मात्र सहारा रहता है ॥१९॥

मूल—त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव स्वर्गं नरकं त्वमेव
गृहं त्वमेव गृहिणी त्वमेव ॥२०॥

टीका—बस मेरे लिये तो तुम्हीं माता-पिता, भाई बन्धु, हित-
मित्र, स्वर्ग-नरक—सब कुछ हो, (क्योंकि)
तुम्हीं घर और घरनी दोनों हो ॥२०॥

कौन-सी चाहिये, यह या वह ?

देख लो पाठक ! अनोखे चित्र दो।
ध्यान इसपर टुक हमारे मित्र दो ॥
कौनसी तस्वीर तुमको चाहिये ?
जानना हम चाहते, बतलाइये ॥

(१)

एक सरला कामिनी है ग्रामकी।
है न भूखी वह जगतमें नामकी ॥
उठ सवेरे पति-चरणकी वन्दना।
करके करती जगत्-पतिकी वन्दना ॥
लेके झाड़ू साफ करती घरको है।
पाक करके वह खिलाती सबको है ॥
बाद इसके बर्तनोंको माँजती।
घरके सब सामान वह है साजती ॥

(२)

दूसरी नारी बड़ी विद्या पढ़ी।
कर रही है पुरुषसे स्पर्द्धा बड़ी॥
आँख तो तड़के कभी खुलती नहीं।
काम करनेको कमर हिलती नहीं॥
घरके सारे काम दासीगण करें।
एक तिनका वे उठाकर क्यों धरें?
पति-चरणकी वन्दना बेकार है।
नारिका क्या कम कहीं अधिकार है?

(१)

एक बच्चेको खिलाती रात-दिन।
देखकर उसको दुखी, होती मलिन॥
निशि दिवा मुखड़ा उसीका जोहती।
मातृ-छवि उसकी सदा मन मोहती॥

(२)

दूसरीके शिशुको मैया धाय है।
दूधके हित घरमें पाली गाय है॥
पुत्रको ले अंकमें रखती नहीं।
रेशमी साड़ी मलिन होगी कहीं!

(१)

एक नित है धान घरका कूटती ।
गीत गा गाकर सदा सुख लूटती ॥
चले जाँता घरमें घर-घर रात दिन ।
प्रिय नहीं चुप बैठना पल एक-छिन ॥

(२)

चन्द्रकान्ता दूसरी है पढ़ रही ।
ऐब अपने औरपर है मढ़ रही ॥
लेख लिखने, काव्य रचनेमें लगी ।
रात-दिन शृङ्गार-रसमें है पगी ॥

(३)

एकके तनपर न गहना एक है ।
मात्र पति स्वामी उसको टेक है ॥
स्वप्नमें निन्दा न स्वामीकी करे ।
है न चिन्ता कुछ, जिये चाहे मरे ॥
स्वामि-सेवामें लगी तन मनसे है ।
प्रेम उसको एक जीवन-धनसे है ॥
हों सुखी स्वामी, सदा यह ध्यान है ।
निज सुखोंका कुछ न रखती ज्ञान है ॥

(२)

दूसरीको सूझती बस मौज है।
हैं मियाँ कैसे, न इसकी खोज है॥
लाओ गहने और रुपये-साड़ियाँ।
हवा खानेको खरीदो गाड़ियाँ॥
रात-दिन फ़रमायशें होती रहें।
अक्ल पतिकी दङ्ग नित होती रहे॥
है न कुछ परवा उसे परिणामकी।
कुछ नहीं चिन्ता उसे धन-धामकी॥
नाच-गानेमें सदा बदमस्त है।
बात करनेमें बड़ी ही चुस्त है॥
काम-धन्धा उससे कोसों दूर है।
यह अँधेरेका महज एक नूर है!

———

वर्षा-वर्णन ।



(बीसवीं सदीकी रामायणके लीडर-काण्डसे उद्धृत)

चौपाई ।

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।
टका हीन कलपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घनमाहीं ।
जिमि लीडरकी मति थिर नाहीं ॥
वर्षहि जलद भूमि नियराये ।
लीडर जिमि चन्दा-धन पाये ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे ।
लीडर-वचन प्रजा सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई ।
जस कपटी-नेता-मति भाई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी ।
जिमि नेतहिं माया लपटानी ॥
सिमिटि-सिमिटि जल भरहिं तलावा ।
जिमि चन्दा नेता पहँ आवा ॥

सरिता-जल जलनिधि महँ जावै।
जिमि पबलिक धन नेता खावै॥

दोहा।

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि मिलाय नेता दिये, श्रुति कुरान गुरु-ग्रन्थ॥

चौपाई।

दादुर-धुनि चहुँ ओर सुहाई।
जिमि लीडर भाषत मनभाई॥
नवपल्लवमय विटप अनेका।
वर्त्तमान-युग लीडर-भेका॥
अर्क जवास पात बिन भयऊ।
जस स्वराजके उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी।
जिमि स्वराजकी आसा दूरी॥
सस-सम्पन्न सोह महि कैसी।
लीडर-गणकी बातें जैसी॥
निशि-तम घन खद्योत विराजा।
नकली नेतनकेर समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी।
जिमि कौंसिलने बात बिगारी॥

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
सत्य तजहिं जिमि सुबुध सयाना॥
देखिय चकवाक खग नाहीं।
जिमि गाँधीजी कौंसिल माँहीं॥
ऊसर बरसै तृण नहि जामा।
कौंसिल गरजे सरै न कामा॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा।
भारत जिमि अँगरेजी राजा।
जहँ-तहँ पथिक रहे थकि नाना।
जिमि नेतागण मुँह पियराना॥

दोहा।

कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ-तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि गाँधीकी फूँकते, मिथ्या भ्रम नसि जाहिं॥

कलियुगी कर्ण ।



नेकनामी आपकी कमाई बड़ी बापकी है,
छाई जग कीरति अनूपम जुन्हैया-सी ।
देखनमें सूधे लगैं, बातें सब टेढी करैं,
भीतरसे बाघ, पर सूरत है गैया-सी ।
पण्डित पढ़ैया वेद सास्त्रके न पावैं मान,
खातिर करत बार-नारिनकी मैया-सी ।
दानमें न धेला कबौं देत दीन दुखिनको,
देत देखि औरै इन्हें आवत अडैया-सी ॥१॥
परम प्रसिद्ध कंजूसनमें मक्खीचूस,
चूस लेहि रक्त भक जो पै कहूँ पावैंगे ।
देइ रिन सूद लागि पीसि देत खद्दूफको,
पाँसे निछवाइ कबौ जूआ हू खिलावैंगे ।
आज देइ डारैंगे रुपैया एक काहूको तो,
काल्हिही जुआमें जोति वापिस मँगावैंगे ।
एक पाई प्रान है, न देवैं सपनेहू काहू,
खाइ यदि जावे रोइ-रोइ मरि जावैंगे ॥२॥

दानवीर लोगनको नाम सुनि काँप उठैं,
जानि न सकत दान कैसे करि डारते।
राम है रुपैया, मैया-बाप है रुपैया, भैया!
ऐसो रुपयाको देइ हाथ किन जारते।
दान-की-ही साध जो अगाध भरी हिय माहिं,
देइ डारें गारी तिन्हैं हाथ जो पसारते।
पण्डित भिखारी गुनी जाचकको दल देखि,
देइ के किवार मूदि नैन मौज मारते ॥३॥
होत जो सभा है कहीं जाति हित, देस-हित,
लाला मक्खीचूस तेहि बीच न पधारेंगे।
लाज औ' संकोच-बस जाइ पहुँचे जो कबौं,
चन्दा हेत अण्टीसे न कौडिहू निकारेंगे।
आइके मुलाहजेमें चन्दा लिखि देत यदि,
देइकै वसूली जान फन्देमें न डारेंगे।
जो पै बनि आयेंगे खजानची सभाके किसी,
सारी जमा मारि कै न नेकहू डकारेंगे ॥४॥
कलियुगी कर्ण कहलाइबेकी साध बडी,
देनेको न नाम लेहिं एकहू छदामको।
गौअनके नामपर नित्तो रखवावैं, पर,
फूँकि-तापि डारें जाइ बागनमें दामको।

धर्म हेत कौडी एक भूलेहू न खर्च करैं,
चाहत सुनाम जस लूटन हरामको ।
हाय पैसा हाय पैसा रटत रहत नित,
भूलेहू न नाम रसना सों कढ़ै रामको ॥५॥

सम्पादकजी ।

हिन्दीमें सम्पादक बनना काम बड़ी आसानीका ।
चलती नाव यहाँ बालू पर काम नहीं है पानीका ॥
बिना फिटकरी या हल्दीके रङ्ग यहाँ चोखा आता ।
बुद्धू भी साहित्य क्षेत्र अपनी धाक जमा जाता ॥
इसीलिये भरमार हुई है ग्रन्थों औ अखबारोंकी ।
गुजर हुई सम्पादक-दलमें कोरे लण्ठ लबारोंकी ॥
नहीं फारसी पढ़ी जिन्होंने जानें थोड़ी-सी हिन्दी ।
उर्दूके भ्रममें अक्षरके नीचे देते हैं बिन्दी ॥
अँगरेजीसे नहीं तअल्लुक बँगला कुछ-कुछ आती है ।
यही मदद सम्पादक बनने में उनको पहुँचाती है ॥
फँसा मालदारोंको जारी किया पत्र भड़कीला-सा ।
सम्पादक बन आप विराजे, छपा नाम चमकीला-सा ॥

रखकर सहकारी सुयोग्य-सा उससे कलम घिसाते हैं।
मुफ्त कमाते नाम सरोंपर झूठा रोब जमाते हैं॥
पोथीकी दूकान खोलकर पुस्तक जो छपवाते हैं।
लेखक कोई होवे, पर वे सम्पादक बन जाते हैं॥
किसी विषयके पण्डितका भी लिखा ग्रन्थ पा जायेंगे।
कोरे होकर भी उससे, वे सम्पादक बन जायेंगे॥
जो विद्यामें सचमुच उनके दादा-गुरु हो सकते हैं।
उनके ग्रन्थोंके सम्पादक बनते नहीं हिचकते हैं॥
शर्म हयासे नाता तोड़ा, धृष्ट हो गये भारी हैं।
पत्र ग्रन्थ-सम्पादक बननेकी उनको बीमारी है॥
एराकी-अरबी घोड़ों पर गदहा रोब जमाता है।
यह लख क्षोभ बड़ा होता है, जी भी कुढ़ सा जाता है॥
किन्तु नहीं दुनिया रहनेकी हरदम भोलीभाली है।
सदा सभीकी मिथ्या लीला यहाँ न चलनेवाली है॥
घड़ा एक दिन फूटेगा ही इस सम्पादकशाही का।
अन्त नहीं आवेगा फिर तो उनकी विकट तबाहीका॥
खाका खींचा जायेगा और जड़ी फब्तियाँ जायेंगी।
बखिये सारे उधड़ेंगे औ' धज्जी उड़ती जायेगी॥
लण्ठदास सम्पादकजी! झट सावधान अब हो जाओ।
कहीं न जाये उलट जमाना, ध्यान यही मनमें लाओ॥

मिलना-जुलना छोड़ सभीसे, रहना सदा अकेलेमें ।
चोंच सँभलकर खोला करना, पड़ना नहीं झमेलेमें ॥
बोल खोल देता है अकसर पोल भीतरी दुनियामें ।
वर्ना फ़र्क बहुत ही कम है, मियाँ शेख औ' धुनियाँमें ॥
कोयल काली, कौआ काला, भेद नहीं इनमें पाया ।
भेद खुला जब ऋतु वसन्तमें कोयलने गाना गाया ॥
इसीलिये समझाया तुमको चुप्पी साध सदा लेना ।
विद्वानोंके सम्मुख अपनी पोल प्रकट मत कर देना ॥

चण्डाल-चौकड़ी !

चौकडी यारो की पक्की । सुधारोंकी चलती चक्की ॥
व्याह विधवाओंके होते । जगाते उनको जो सोते ॥
मिलाते दाढ़ी औ चोटी । सङ्ग सब खाते हैं रोटी ॥
इसीसे समझ लिया उद्धार । राम कर देगा बेड़ा पार ॥
चार यारो की यह टोली । निराली इसकी है बोली ॥
कहें कुछ और, करें कुछ और । हमारे नित्य बदलते तौर ॥
बगलमें छुरी, राम मुखमें । निरन्तर रहें मस्त सुखमें ॥
असहयोगी थे पिछले वर्ष । जेल थी खेल, दुःख था हर्ष ॥

फण्ड जमना बजाजजीका । रहा आधार चना जी का ॥
वकालत खाक नहीं चलती । लीडरी अगर नहीं मिलती ॥
इसीसे खद्दर कुछ दिन धार । दिखाया खूब देशका प्यार ॥
छुड़ाया छात्रोंका पढ़ना । सिखाया देश हेतु मरना ॥
पर गये फिसल हमारे पैर । जेलकी कर आये जो सैर ॥
फेंक चादर खद्दरकी दूर । किया व्रत सारा चकनाचूर ॥
वकालत कर दी फिर जारी । सहेंगे कबतक हम ख्वारी ?
जिन्हें हमने था भड़काया । नौकरी-पढ़ना छुड़वाया ॥
घेरते आज सभी हमको । न चलने देते हैं हमको ॥
होशकी दवा न क्यों करते । अभागे मरते तो तरते ॥
अरे, हम रँगे सियारोंके । देशके नकली प्यारोंके ॥
जालमें जो भी आवेगा । दीन-दुनियासे जावेगा ॥
पलटना घात सिद्ध हमको । जान लो स्वार्थ-गिद्ध हमको ॥
नारिको जूते मारेंगे । सभामें लेक्चर झाड़ेंगे ॥
"नहीं तबतक सुधार होता । नारिका मान नहीं होता ॥
बन्द परदेके अन्दर हैं । जेलही उनके हित घर हैं ॥"
पर नहीं मान स्वयं करते । नारिका ध्यान नहीं धरते ॥
तङ्ग है अपनी ही नारी । रात दिन सुनती है गारी ॥
मार गालीही हैं सहती । नामको सौख्य नहीं लहती ॥
"ब्याह विधवाओंका करना"-हमारा नित्य यही कहना ॥

पर नहीं घरमें हैं करते । स्वयं अपने करते डरते ॥
कहें हम "जाति-पाँति तोड़ो । सभीसे नाता अब जोड़ो ॥
चनाओ ब्राह्मण बनियेको । धनुर्धर क्षत्री धुनियेको ॥
खिलाओ ब्राह्मन सँग धोबी । मिले ज्यों आलूमें गोबी ॥"
पर नहीं आप कभी खाते । बापके मारे घबराते ॥
मरेंगे कब सड़ियल बुड्ढे ? देशके पट जायें गड्ढे ॥
हमारा दल चारो का है । अखाड़ेके यारोंका है ॥
कर चुके शेष देश-उद्धार । लीडरीकी बाजी ली मार ॥
करेंगे अब समाज संस्कार । रण्डियोंका करके उद्धार ॥
उन्हे ऊपर लाना होगा । बजाना औ गाना होगा ॥
गजल, ठुमरी, ख़याल टप्पा । लगेगा धुरपद्का धप्पा ॥
बजेंगे तबला औ डुग्गी । नाचकर गायेगी सुग्गी ॥
भाड़में जाये सारा देश । न हमको कोई भी है क्लेश ॥
मौजसे लीडर कहलाये । कचहरी प्लीडर बन आये ॥
कुछ दिनों छूटा यह धन्दा । सहारा था पबलिक चन्दा ॥
न अब फूटी कौड़ी पाते । कचहरी छोड़ कहाँ जाते ?
इसीसे लिया थूककर चाट । लिया चोगा-चपकन है डाट ॥
कहे कोई कुछ, सुनता कौन ? लाख रुपयेसे बढ़कर मौन ॥
काम तो अपना चलता है । किसीको क्यों यह खलता है ?
खलो की है सारी चलना । दुष्टही पर-सुख लख जलता ॥

नयी रोशनी।



* काला साहब *

चकाचौंध फैली नयी रोशनीकी।
हवा भर रही पश्चिमी धौंकनीकी॥
न अपने रहे भाव औ भेष-भाषा।
अजब हो रहा है यहाँका तमाशा॥
चढ़ा रङ्ग चोखा समीपर यहाँ है।
हुआ दङ्ग लखकर नजारा जहाँ है॥
अजब बन्दरों सी शक्ल है बनाई।
तिलक-छाप दे पेन्हते नेकटाई॥
बदन देख झक मारती रोशनाई।
मगर साहबी ठाटकी धुन समाई॥
कलूटी शकलपर मनों "सोप" मलते।
चढ़ा "बूट डौसन" मटक चाल चलते॥
लगा "सोप पीयर्स" हैं देह धोते।
नहीं पाक कौए कभी हंस होते॥
लुटी देशकी श्री, विलायत गई है।
नहीं आपकी नींद गायब हुई है॥

गु़लामीका ऐसा नशा चढ़ गया है।
न बाकी रही शर्म या कुछ हया है॥
रहे अब न पण्डित, न बाबू न लाला।
हवस साहबीको, मगर रङ्ग काला॥
नहीं नीति भाती पुराने समयकी।
लगी धुन सदा साहबोंकी नकलकी॥
चरण चूमते पश्चिमी अफसरोंके।
करें चूर सिर नित्य देशी नरोंके॥
करोड़ों विचारे नही अन्न पाते।
दया हाय! उनपर नहीं आप लाते॥
कहीं 'वोट' लेना हुआ वोटरोंसे।
न नीचे रखे गे उन्हें मोटरोंसे॥
मगर चार दिन बाद रङ्गत बदलती।
उन्हीं वोटरोंपर छुरी तेज चलती॥
हया-शर्म धो धारमें है बहा दी।
नयी चाल देखो अजब है चला दी॥
लिये सङ्ग बीबी हवा खा रहे हैं।
गले बाँह डाले मजा ले रहे हैं॥
बना मेम पूरी शहरमें घुमाया।
बलाकी तरह दूर घूँघट हटाया॥

न साहबपनेमें कसर एक रक्खी ।
यहीं बैठ मौजें सभी नित्य चक्खीं ॥

काले साहबका बाबा

हुआ बापसे पुत्रका रङ्ग चोखा ।
बडा बापको दे रहा नित्य धोखा ॥
उन्हें 'मूर्ख बुड्ढा' सदा कह पुकारे ।
है लौंडा मगर साहबी रङ्ग धारे ॥
लगा हैट, मोटर चढा, घूमता है ।
सदा साहबों के चरण चूमता है ॥
जहाँ "केलनर-कैफ" में जा पधारा ।
महाभक्ष्य भोजन गलेसे उतारा ॥
गटक बोतलें तारता पीढ़ियों को ।
खतम कर रहा सभ्यता-सीढियो को ॥

काली मेम

हुई नारियाँ भी अजब आजकी हैं ।
निशानी न बाकी रही लाजकी है ॥
गया घाँघरा और साड़ी उतारी ।
पहन गौन चलती नगरमें सवारी ॥
चढ़ी नाकपर स्वच्छ ऐनक चमकती ।
कलाई-घडी कर-कमलमें झलकती ॥



मियाँ-सङ्ग बाजारमें डोलती हैं।
सभा-मध्य आ बेधड़क बोलती हैं॥
नहीं शील, आँखें सभीसे लड़ातीं।
नयन-बाण बेरोक सबपर चलातीं॥
जरा साँवले रङ्गकी हैं दिखाती।
मगर गोरियोंको नहीं कुछ लगातीं॥
नहीं तेल-उबटन कभी हैं लगातीं।
'पमेटम' रगड़ रङ्ग गोरा बनातीं॥
घिसा 'पाउडर' गालपर नित्य जाता।
'हिमानी' का मक्खन मला रोज जाता॥
चरणमें महावर लगावे गँवारी।
कड़े और छड़े कौन पहने सु-नारी?
पहन बूट, मोजे मनोहर चढ़ाये।
बगलमें "उपन्यास" चलतीं दबाये॥
लिखे लेख औ' रोज कविता बनायें।
नया पाठ नारी-जनोंको पढ़ायें॥
"लखो नारियो! स्वत्व क्या है तुम्हारा?
सुनो आज कर्त्तव्य क्या है हमारा?
पुरुष और नारी बराबर कहाते।
मगर आज छोटे-बड़े हैं दिखाते॥

मियाँ हैं बने 'लार्ड' हम नारियोंके।
विधाता सभी भाँति सुकुमारियोंके॥
करें लाख जोरो-सितम नारियों पर।
बडा जुल्म है हाय! बेचारियों पर॥
उठो, लो कमर कस, लडो आज उनसे।
सभी छीन अधिकार लो आज उनसे॥
उठो, दासताकी दशा यह मिटाओ।
तजो मूर्खता शीघ्र घूँघट हटाओ॥
करें कोशिशे हम सभी आज आयें।
जुडी गाँठको तोडना अब चलायें॥
चलायें प्रथा हम रसम छोडनेकी।
किसी दममें रिश्ता रसम तोडनेकी॥
विलायतकी मेमें तुरत छोड देती।
पुन नेह नाता नया जोड लेतीं॥
किया किस तरह सर वहाँके नरोंको।
नचाये मदारी यथा वन्दरोंको॥
जगत्में बडा मान वे पा रही हैं।
हमीं दु ख सहती चली जा रही हैं॥
मिटाना हमें आज होगा अँधेरा।
तभी ज्ञानका देख सकतीं सवेरा॥

खसम-छोड धीजी जगत्में पुजाती।
बड़ा मान आदर यहाँ नित्य पाती॥
सती कौन होगी सदी बीसवींमें?
रही हिन्दुआई कहाँ ईसवीमें?
सती बन करे नित्य पतिकी टहल है।
बड़ी मूर्ख है वह, न उसको अक़ल है॥
मिलेगी उसे नित्य फटकार-गाली।
न गहना, न कपड़ा, न लोटा, न थाली॥"

स्वराजी।

हम हैं स्वराजी, देस-उन्नतिके कामी, अरु
नामी हैं जहानमें उदारताकी खान हैं।
जाति है हमारी नहि हिन्दू न मुसलमान,
"इण्डियन" नाम ही हमारो अभिधान है॥
काँगरेस-रेसमें पछाड खाइ औंधे मुँह,
जेल-दुख पाइ, तन छीन, मुख म्लान है।
याही ते बनाई नई पारटी जबरजङ्ग,
मानै सब लोग जिन्हें आँख अरु कान हैं॥१॥

भारतसों लेइकै विलायत लौं काँपि उठ्यो,
सोर अस घोर पारटीको मचवायो है ॥
रेडिङ्ग डराये, घबराये मजदूर-दल,
पार्टीको पायो मजबूत बनवायो है।
धमक दिखराइ सरकारको बगावतकी,
उलटो असर यहि बातको दिखायो है।
धार तो मुडी न मानटेगूके सुधारनकी,
रेडिङ्गने गरजि-गरजि डरपायो है ॥२॥
सी० पी० में स्वराज-दल विजय-निसान लेइ,
द्वौ हुजूर मन्त्रिनको दूर करवायो है।
भई गति याही है बँगालके वजीरनकी,
वेतन बिनाही अर्द्धचन्द्र दिलवायो है।
काँपि उठे रेडिङ्ग, गरजि उठे लीटन भी,
पकरि स्वराजिनको जेल भिजवायो है।
देखहु निर्दोषनको दण्डके प्रभाव आज,
सबहि स्वराज-पारटीको अपनायो है ॥३॥
गाँधीबाबा आइकै मिले हैं याही दल-बीच,
काँगरेस सारी पारटीके हाथ आई है।
देसमें दबाव रोबदाब याही दलको है,
सबको सहानुभूति सहजहिं पाई है।

दास-नेहरू पै आस लागी सारे देसकी है,
अति अभिलास उर बीचमें समाई है ।
लाटकी सभामें किन्तु वक्तृता सिवाय कछु,
चोखी करतूति अब लौं न बनि आई है ॥४॥

सूदखोर-गुणगानम् ।

ग़रीबोंका हर रोज उपकार करना ।
किसानोंको ऋण दे सुखी नित्य करना ॥
यही आपका काम कल्याणकारी ।
महामोददायक, बड़ा सौख्यकारी ॥
रखेगा अमर नाम उज्ज्वल तुम्हारा ।
पसारे रहेगा सुयशका पसारा ॥
बड़े प्रेमसे आप धन मूसते हैं ।
सदा जोंक-से रक्तको चूसते हैं ॥
न होली-दिवाली सलूनो-दसहरा ।
किसी दिन कभी सूदका ध्यान बिसरा ॥
न सन्ध्या, न पूजा, न रोजा, न फाका ।
फक्त आपको सूदहीसे इलाका ॥

मरें क्यों न भूखों करज खानेवाले।
नहीं आप उनपर तरस लानेवाले॥
न देवे अगर सूदका धन विचारा।
करें आप घर-द्वार भी कुर्क सारा॥
कभी एक पैसा नहीं छोडते हैं।
कसाईपनेसे न मुँह मोड़ते हैं॥
कड़ा सूद ले ले बड़ा माल मारा।
दया धर्मसे कर लिया है किनारा॥
बड़ी तोंद मोटी, बडा पेट भारी—
हुआ आपका—देखकर बुद्धि हारी॥
बड़ा नाम कंजूसपनमें कमाया।
है धन ही बहुत आपके चित्त भाया॥
गया बीत जीवन, नहीं है लगाई।
कभी धर्ममें सूदकी एक पाई॥
भरी घरमें दौलत, बड़े हैं कहाते।
मगर कुछ बड़प्पन नहीं हैं दिखाते॥
जगत-बीच दानी बडा मान पाता।
वही है सभा मध्य सम्मान पाता॥
मगर सूद खा खा भरे ले तिजोरी।
कड़ा सूद ले नित्य माया बटोरी॥

न खुद आप खाये, किसीको खिलाये ।
करे दान खुद ना किसीसे दिलाये ॥
लगे मुखमें उसके बुलू-ब्लैक-स्याही ।
करे राम उसकी निरन्तर तबाही ॥

घबराहट ।

लिखना मुझे नहीं आता ।
"लेख, लेख" क्यों चिल्लाते हो ? माफ़ करो भ्राता ॥१॥
तुम तो हो साहित्य-विशारद, लिखे-पढ़े भरपूर ।
मुझको लिखना-पढ़ना अब तो तनिक नहीं भाता ॥२॥
किसी तरहसे कलम चलाकर पेट भरा करता ।
दैव-योगने कलम पेटका जोड़ दिया नाता ॥ ३ ॥
इधर-उधरके लेख उड़ाकर, बना फिरा लिक्खाड़ ।
अब तो ऐसा धोखा जगको दिया नहीं जाता ॥४॥
रोज मनाता हूँ ईश्वरसे—"मुझे हटा लेना—
हिन्दीके साहित्य जगतसे, दया करो त्राता ।" ॥ ५ ॥
इस साहित्य जगत्‌में देखा, फैल रहा अन्धेर ।
मुझ-सा मूर्ख बड़ा सम्पादक यहाँ गिना जाता ॥६॥

एक ओर लेखक-लीला है जैसी अपरम्पार ।
ग्रन्थ-प्रकाशक-गणका दल भी, वैसा दिखलाता ॥७॥
लेना चाहें मुफ्त ग्रन्थ औ' कौडी देवें नाहि ।
लेखक-गणपर इन देवोंको तरस नहीं आता ॥८॥
फिर देखो आपसमें लेखक जूते लात चलावें ।
एक दूसरेको गाली ही देता दिखलाता ॥९॥
इसी हेतु लिखने-पढ़नेसे श्रद्धा उठती जाती ।
सम्पादकजी ! लेख न माँगो, जी है घबराता ॥१०॥
भरने दो, बस, पेट मुझे, औ' रहने दो एकान्त ।
मेरे लेख बिना न आपका कुछ बिगड़ा जाता ॥११॥

बसन्त-स्वागत ।

प्यारे बसन्त ! आओ, दिलकी कली खिलाओ ।
हम हिन्दुओंकी खुजली, बस जल्द ही मिटाओ ॥
दो-चार लात-घूँसे, थप्पड़ चपत करारी ।
गुण्डोंके कर-कमलसे उपहार यह दिलाओ ॥
जबतक न लात खावें, तबतक न चैन पावें ।
प्रति दिन हमें मिले यह, तरकीब वह बताओ ॥

था शीतसे ठिठुरता अरतक वदन हमारा ।
सहनेमें लात-जूता मज़बूत अब बनाओ ॥
जयचन्दने उठाया जूता विदेशियोंका ।
उस नेमको निबाहें, यह प्रेम हिय जगाओ ॥
आदत हजार वर्षों से जो लगी हमारी ।
उसको किसी तरहसे, प्यारे ! नहीं छुड़ाओ ॥
दो बुद्धि हमको ऐसी, उल्लू बने रहें हम ।
करवट कभी न बदलें, इस नींदमें सुलाओ ॥
हो लाख भाइयोंका अपमान, हानि होवे ।
चिन्ता नहीं हमें हो, बेफ़िक्र यों बनाओ ॥
वेदान्त-ज्ञान सच्चा हमको सदा सुलभ हो ।
संसार-गति दिखाकर गुमराह मत बनाओ ॥
हमको नहीं हो चिन्ता, मिल जायँ धूलमें जा ।
भूलें न सिर उठाये, यह सीख तुम सिखाओ ॥
हमको वसन्तकी तो कुछ भी नही खबर हो ।
"मालिक है राम" रट यह रसनासे नित कढ़ाओ ॥
अलमस्त, सुस्त, काहिल, ग़ाफ़िल बने रहें हम ।
'क्या हो रहा जहाँमें ?' हमको न यह सुनाओ ॥
तुमको बहार कहते, करने बहार ही दो ।
ठोकर लगा-लगाकर हमको न तुम जगाओ ॥

आओ, वसन्त ! आओ, स्वागत सहर्ष करते ।
गाँजेका दम लगा दो या भङ्ग ही पिलाओ ॥
कुछ हैं चरसका चस्का, मदिरा महान प्रिय है ।
यदि हो सके तो फौरन, दो बोतलें दिलाओ ॥
हम हैं अफीमची भी, यह साफ जान लो तुम ।
राहे-खुदा रहमकर, दो 'ग्रेन' ही दिलाओ ॥
शुभ आगमनमें अपने प्यारे वसन्त ! अब तो ।
"उल्लू बसन्त" हमको संसारमें बनाओ ॥

लेखकी माँग ।

'सम्पादकजी ! नमोनमस्ते, पत्र आपका प्राप्त हुआ ।
पढकर शोक समेत हर्षका भाव हृदयमें व्याप्त हुआ ॥
फूल गया यह बात देखकर, लेखक मुझे समझते आप ।
किन्तु लेख लिख देना होगा, सोच यही होता सन्ताप ॥
लेखक क्या हूँ, अनुवादक हूँ, गुपचुप लेख चुराता हूँ ।
बदल-बदलकर इधर-उधरसे, अपने नाम छपाता हूँ ॥
किन्तु आप-से बहुभाषाविदु लोगोंसे मैं डरता हू ।
लेख आपके लिये लिखूँ क्या ? सोच-सोचकर मरता हूँ ॥

यही नहीं केवल है, कारण इसका और दिखाता हूँ।
लेख नहीं क्यों अब लिखता हूँ, वह सब सत्य बताता हूँ॥
बिना टकेका लेख माँगते, आप नहीं शर्माते हैं।
लेखोंके बदलेमें हम कुछ लेते हुए लजाते हैं॥
इससे तो है कहीं भला यह, असहयोग कर लें हम आप।
पत्र न भेजें आप मुझे फिर, देवें नहीं मुझे सन्ताप॥
नहीं चाहिये पत्र आपका, मुझे माफ कर दें चुपचाप।
राजी रहूँ इधर मैं भी औ' खुश रहिये अपने घर आप॥

अनुरोध।

"लेख लिख दो," "लेख लिख दो"—सुन तक़ाजे मर गया।
किन्तु घिसने से कलम जी तो हमारा भर गया॥
काम धन्देसे हमें फुरसत कभी मिलती नहीं।
लेख लिखनेके लिये अब तो क़लम चलती नहीं॥
मित्र-मण्डलके सभी सरदार सम्पादक बने।
जो न पायें लेख, उनकी भौं न हमपर क्यों तने?
'छोड़ दो या मित्रता, या लेख लिख भेजा करो।'
सख्त हैरतमें पड़ा हूँ, हे प्रभो! रक्षा करो॥

था बुरा वह दिन हमारा लेख जब लिखने लगा।
छोडकर पढ़ना पढ़ाना कलम ही घिसने लगा॥
आजतक अखबारमें यदि लेखही छपता नहीं।
लेख लिखनेके लिये कोई कभी कहता नहीं॥
पेट-भर खाना नहीं, तनपर भला कपड़ा नहीं।
पासमें है नामको भी दाम औ' दमडा नहीं॥
देखकर यह हाल मेरा, नेक खाओ तर्स भी।
माँगकर अब लेख मुझसे मत बढाओ मर्ज भी॥
जान लो मैं मर गया, अथवा न लिखना जानता।
मूर्ख हूँ, बस कृष्ण अक्षर भैंसके सम मानता॥
इस तरह सन्तोष कर लो, शान्त रहने दो मुझे।
करके मजदूरी किसी विधि, दिन बिताने दो मुझे॥

सरस्वती-पूजा।

आई हैं सरस्वती हमारे घर आज,
हर साल आइ छाती पै धमकि चढ़ि जाती हैं।
मूढ़ हम जानैं नहि सास्त्रनके गूढ भाव,
फेरि आइ खोपडी हमारी क्यों चबाती हैं?

कौन हैं सरस्वती ? न जानैं पहचानैं हम,
हमसे पुजाइवेकी आस उर लाती हैं ।
बुद्धि बिगरी है सारदाकी देखु भाई !
तजि यूरप-प्रदेश फेरि याही ओर आती हैं ॥१॥
भारतके दिन वे पुराने गये बीत सब,
गावें नये गीत न पुरानी रीत भाती है ।
माटीकी बनाइ खूबसूरत-सी मूरतको,
पूजनको हिय न उमङ्ग उमगाती है ।
फूल-माल लैके हम पूजैं सारदाको,
यहि बात हमसे तो नहि भूले बनि आती है ।
जानि यहि हाल फेरि बीनाधारिनी यों आज,
लाज तजि द्वार पै हमारे चली आती हैं ॥२॥
मूरख बनाइ हीजड़ों-सी करि हिम्मतको,
ज्ञान-गरिमाको गढ़ सारे ढहवाये हैं ।
ऐसे हैं दयालु देव स्वामी हम मूढनके,
पेट भरि भोजन सुदुर्लभ कराये हैं ।
बेद गयो, सास्त्र गयो, लोक-मरजाद गयो,
होटल प्रसाद-स्वाद अति मन भाये हैं ।
एते पै अनोखे साज देखिके हमारे देवि !
चरन-सरोज केहि हेतु आज आये हैं ? ॥३॥

भाती देव-बानी न सुहाती महारानी हिन्दी
कौन-सी जुबान समझेंगी आप भारती ?
फारसी सुनाऊँ, स्तुति गाऊँ उरदूमें किधौं,
ठलकि सुनाऊँ अँगरेजी भफकारती।
आप यदि भारती हैं शब्दमयी मातु,
तब क्यों न अँगरेजीकी बघार हैं बघारती।
सुनि सरकारकी हमारी प्रिय भाषा देवि।
विपद हमारी क्यों न सारी आप टारतीं ? ॥४॥

श्लोक न पढ़ेंगे, रसनाले न कढ़ेंगे, अर
हत्ये न चढ़ेंगे हम सारदा भवानीके।
जाओ तहँ देवि! जहँ करति निवास अब,
भारतीय सेवक हैं मूढ़ता दिवानीके।
सारी रीति-भाँति हमें पच्छिमकी भाती आज,
लाज तजि निपट भये हैं बिना पानीके।
भाई-बाप-माईकी न भाई हमें बात नेकु,
बचन सुहात दिन-रात पर-नानीके ॥५॥

मूढ़ सब भाँतिसों कहावैं हम भारतीय।
कौन मुँह लाइ पूजा करें बीनापानीकी।
देवी सारदाके कभौं पूजक रहे थे, आज
मूढ़ता रही है बात उनकी निसानीकी,

जो पै मातु सारदा दयालु होतीं भारत पै,
कीरति बचातीं बुद्धि-विद्या-वरदानीकी ।
मूरख बनाइ, जग-बीच हँसवाइ अब,
चाहति हैं पूजा फूलमाला धूपदानीकी ॥६॥
खानमें बिदेसी, हम पानमें बिदेसी भये,
जानमें बिदेसी अनजानमें बिदेसी हैं ।
पाद पकजोंको परकीय हम पूजें नित्य,
भावें नहिं भाई निज ग्रामके स्वदेसी हैं ।
चाल-ढाल यूरपकी अति ही सुहावे हमें,
फूटी आँख भावे नहिं कोई छप्पाकेसी हैं ।
या ही हेतु देवि ! तुम उलटि सिधारो घर,
भाव-भक्ति-प्रेमकी यहाँ न लवलेसी है ॥७॥

वसन्त-पंचमीके बाद ।

पूजा हुई ठाटसे वसन्तपञ्चमीके दिन,
सारदा भवानी बुद्धि-विद्या-वरदानीकी ।
बाजे पशु बाजे, बाजे ढोल औ मृदङ्ग-झाँझ,
गायी गीत-गाथा निज कीरति-कहानीकी ।

मूरति मँगाइ फूल-चन्दन चढ़ाइ धूप-
दीप दिखराइ नैवेद्य नजरानी की।
ऋद्धि-सिद्धि दानी सारदाको चार चाँवल पै,
प्रेमसों रिझाइ ठाटदार अगवानी की ॥१॥
भारतपै देवी सारदाकी ममता है बड़ी,
तबै फूट फैली, सगे भाई सत्रु होते हैं।
जूते-लात चलैं दिन रात यहाँ आपसमें,
प्रेमसों पराये पद ध्यान सीस ढोते हैं।
देखि दसा हिन्दुन की होति न दया है काको,
कौनसों विवेकीके न रोएँ खड़े होते हैं ?
किन्तु ये पसारे पाँव गोदमें गुलामीकी ही,
आँखें मींचि मौजसे मजेसे पौढ़ि सोते हैं ॥२॥
आसरा सहारा वेहयाईको न लेते तब,
कैसे सारदाको निज मुख दिखरावते ?
सारे देस-बीच मूढ़ताकी कीच फैलि रही,
एते पै न देवीको सदन पधरावते।
साफ़ न हुए हैं दिल आपुसमें भाइनके,
देवीके निकट कैसे कण्ठसे लगावते ?
ढोंग है तिहारो, पूजा-पाठ है नकारो,
यदि लखि करतूति हिय सोच नहिं लावते ॥३॥

लण्ठ-शिरोमणि !



खोली जो जुबान है खिलाफमें हमारे,
हम मारें लात जूतोंके कचूमर निकारेंगे ।
फोरेंगे तुम्हारी खोपडीको खण्ड-खण्ड करि,
होसको सम्हालो, नहिं दाँत तोरि डारेंगे ।
पोल मत खोलना हमारी कर्यौं भूल करि,
हमहूँ तिहारे काज बहुत सँवारेंगे ।
भूँसि-भूँसि लायेंगे अपार धन चन्दा करि,
खाइ आप, कछुक तुम्हारी जेब डारेंगे ॥१॥
आओ, चलें, खोलें पाठसाला पसुसाला कहीं,
ठाटसे तिजारत चलावें भिखमङ्गीकी ।
झोली लटकाइ, मुँह बाइ, दिखाइ दाँत,
चन्दाको उगाहैं करें बात बहुरङ्गीकी ।
नेकु ना लजावें जो पै दान कछु पावें हम,
करत खुसामद चमार अरु भङ्गीकी ।
यार ! बदनामी न हमारी करनेकी ठानो,
हमहि जरूरत तुम्हारे अस सङ्गीकी ॥२॥

सिद्ध बनि जावैं हम, साधक बनावैं तुम्हें,
बाधक बनौं ना यहि पुन्यकी कमाईमें।
रङ्गको जमाओ, बहु ढङ्ग दिखराओ भजी,
आजके जमानेमें न गुजर सिधाईमें।
सीधे साँचे लोगनको घेरहु न ढेर मिलै,
हमसे लबारनकी नाक है मलाईमें।
लण्ठके सिरोमनि हो, चण्ट बनि जाओ, कहीं
पैठन न पावैं जजमान गहराईमें ॥३॥
भाल पै तिलक देइ कुंकुमऽरु केसरको,
पण्डितको भेस रचि भोले भरमाइये।
तन्त्र, मन्त्र, यन्त्रको चलाइ पड्यन्त्र कछु,
रकम कमाइ बीबी बच्चोंको जिलाइये।
खद्दरको धारि रखवाइ देसभक्त नाम,
वक्ता पधारिके स्वराज झुलवाइये।
जैसे बने वैसे छलछन्दसे कमाओ दाम,
नित्य बगुला-सी भगताई दिखराइये ॥४॥
कलियुग पावन सुहावन सुकाल यह,
लण्ठ बनि बंसी क्यों न चैनकी बजावते ?
सत्ययुग, त्रेता अरु द्वापरमें मूढ़ जन,
पुन्य करि बेहद अपार दुख पावते।

दानी हरिचन्द्र, रामचन्द दुख पाये बहु,
पाण्डव निचारे दिन कष्टपि वितावते।
काहेको करत कलिकालकी बुराई लोग,
पापी जब भोग मालपूआको लगावते ॥५॥

आत्म-प्रशंसा।

मैं लेखक-गणका सरदार।
महिमा मेरी अपरम्पार॥
पढ़ा-लिखा चौकस पूरा हूँ।
नये चाँवलोंका चिउड़ा हूँ॥
भाषाकी अनुपम शैली है।
शब्दोंकी पूरी थैली है॥
किसी विषयपर लेख लिखाओ।
सम्पादक चाहे बनवाओ॥
करतब देख निराले मेरे।
रहता अचरज सबको घेरे॥
बँगला खूब पढ़ी है मैंने।
उर्दू भी सीखी है मैंने॥

गुप चुप लेख चुराऊं उनके ।
चिड़िया ज्यों चुगती है तिनके ॥
उनको अपने नाम छपाऊँ ।
सबपर झूठा रोब जमाऊँ ॥
जो मेरे गुरु कहलाते थे ।
लिखना मुझको सिखलाते थे ॥
वे तो छिपे अँधेरेमें हैं ।
घिरे रात दिन घेरेमें हैं ॥
दुनिया उनकी बात न जाने ।
लेखक बड़ा मुझीको माने ॥
गुरुको दुर्लभ चना चबेना ।
जगसे कुछ नहिं लेना-देना ॥
मैं वेतन गहरा पाता हूँ ।
पूरी मालपुआ खाता हूँ ॥
रबडी खोवा और मलाई ।
तरह-तरहकी सरस मिठाई ॥
मुझको सुलभ सभी दिन होती ।
देख देख बीबी खुश होती ॥
बच्चे नाचें पीटें ताली ।
भरी हुई जब पावें थाली ॥

पण्डित पढ़े घरोंमें रोवें ।
बिन खाये मुँहको नित धोवें ॥,
लेखक मैं कहलाता जगमें ।
अकड़-अकड़के चलता मगमें ॥
सब मिलके मेरे गुण गाओ ।
उभय लोकमें सब सुख पाओ ॥
सिरपर लाल लगाऊँ बिन्दी ।
धन्य हुई मुझसे है हिन्दी ॥

